5

विकास और नौकरशाही

[DEVELOPMENT AND BUREAUCRACY]

एशिया और अफ्रीका के जो देश पश्चिमी देशों के गुलाम रहे हैं, आज स्वतन्त्र हैं और आर्थिक-सामाजिक विकास में लगे हुए हैं। उनका यह प्रयास समाज के समस्त क्षेत्र का विकास करना है किन्तु पर्यावरण संरक्षण के अन्तर्गत। सचमुच में 'विकास विकासशील देशों की राजनीति का केन्द्र-बिन्दु है।' विकास की प्रमुख इकाई प्रशासनिक तन्त्र है (लोक प्रशासन में इसे नौकरशाही कहते है)। लोक प्रशासन में इसे 'विकास प्रशासन' कहते हैं। इसके माध्यम से आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लाया जा सकता है। विकासशील देशों के विकास की तीन विशेषताएँ हैं—"प्रथम, यह विकास सर्वांगीण है। इसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, आदि सभी अंश हैं। दूसरे, इस विकास का समस्त या अधिकांश भार सरकार के ऊपर है। तीसरे, सुनियोजित योजना द्वारा विकास करने के लिए ये देश कटिबद्ध हैं। ये समस्त बातें भारत पर लागू होती हैं, क्योंकि विकास का समस्त भार सरकार पर है। अतः विकास के लिए सरकारी तन्त्र अथवा नौकरशाही का सशक्त होना अनिवार्य है। यदि प्रशासनिक तन्त्र (नौकरशाही) कमजोर, अक्षम और निकम्मा है तो विकास की गति मन्द बनी रहेगी।"[1] इससे स्पष्ट है कि नौकरशाही और विकास एक-दूसरे के पूरक हैं तथा विकास नौकरशाही के बिना सम्भव नहीं है।

विकासशील देश अनेक वर्षों से योजनाबद्ध तरीके से विकास कार्य में लगे हुए हैं। विकास के मार्ग में इन देशों को अनेक कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। प्रमुख बाधाएँ निम्नलिखित हैं :

1. विकास कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रशिक्षित सेवीवर्ग की कमी का होना है। यह समस्त क्षेत्रों में देखने को मिलता है विशेषकर तकनीकी और प्रौद्योगिकी क्षेत्र में।
2. विकासशील देशों में राजनीति से प्रेरित महत्वाकांक्षी नीतियाँ बनायी जाती हैं और नारेबाजी ज्यादा होती है। इसलिए कार्यक्रमों को समय के अनुकूल बदलने में कठिनाई होती है।
3. सरकारी ढाँचे का बेतहाशा विस्तार होना है। लोक-सेवकों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है; नवीन विभाग खुल रहे हैं। इस कारण समन्वय की समस्या जटिल हो जाती है। साथ ही, इसमें मूल उद्देश्यों को दूर करने की लगन धीमी पड़ जाती है।

---

1. Avasthi & Maheshwari : *Public Administration*, Agra, Lakshmi Narain Agarwal, 1998, p. 376.

4. सरकारी कर्मचारियों का उत्तरदायित्व अस्पष्ट बना रहता है। लोक प्रशासन की व्यवस्था के लिए व्यक्तिगत जिम्मेदारी का पता लगाना सम्भव नहीं हो पाता है।
5. प्रशासनिक ढाँचे में स्थूलता आ जाती है। निर्णय लेने में देरी, प्रत्यायोजन की कमी देखने को मिलती है। क्षेत्रीय अधिकारियों को केन्द्रीकरण के कारण कार्य करने में असुविधा का सामना करना पड़ता है।
6. सामान्य और विशेषज्ञ प्रशासक के सम्बन्ध तनावपूर्ण रहते हैं। विकास की कुंजी तो विशेषज्ञों के हाथ में है, क्रियान्वयन सामान्य प्रशासक करते हैं, लोक प्रशासन में विशेषज्ञों को अपेक्षित सम्मान व महत्व नहीं मिलता है।
7. विकासशील देश यद्यपि योजनाबद्ध विकास में विश्वास रखते हैं, परन्तु योजना बनाने के प्रशासन तन्त्र में पर्याप्त कमी है। आयोजक देश की वास्तविक समस्याओं से भली प्रकार परिचित नहीं रहते हैं; सही आँकड़ों का, जिन पर कार्यक्रम बनाये जाते हैं, अभाव रहता है।
8. विकासशील देशों का सबसे कमजोर पक्ष क्रियान्वयन का प्रशासकीय तन्त्र रहता है। अनेक योजनाएँ तो केवल कागज पर ही रह जाती हैं।
9. शक्तियों का केन्द्रीकरण होने के कारण कार्य में विलम्ब होता है। जनसहयोग और जनसहभागिता का पक्ष कमजोर होने के कारण विकास कार्य की गति धीमी रह जाती है।
10. नौकरशाही का राजनीतिकरण होने के कारण, सेवीवर्ग सत्तारूढ़ राजनीतिक दल की कठपुतली बन जाता है।
11. प्रशासन में व्यापक रूप से भ्रष्टाचार व्याप्त है, इसलिए जिनको लाभ मिलना चाहिए नहीं मिल पाता है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि नौकरशाही में परिवर्तन को गति देने हेतु निर्देशन एवं गतिशीलता प्रदान करने के लिए एक स्थायी और सुदृढ़ राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता है। विकासशील देशों की राजनीतिक प्रणाली का प्रमुख दोष (विशेषकर भारतीय शासन प्रणाली का) यह है कि राष्ट्र-निर्माण तथा आधुनिकीकरण के लक्ष्यों और माँगों के विषय में इसकी प्रतिक्रिया अत्यन्त निष्प्रभावी है। अतः प्रशासकों के कैडर को इस तरह प्रशिक्षित समाजनिष्ठ और निर्देशित किया जाय कि वे संवेदनशील हो जायें, आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढाल सकें तथा समाज की समस्याओं के प्रति जागरूक हो सकें। संक्षेप में, विकास के लिए नौकरशाही के साथ-साथ सरकारी तन्त्र को भी सशक्त होना आवश्यक है।

विकास क्या है ? (What is Development ?)

विकास की अवधारणा न तो नवीन है और न ही प्राचीन। विकास एक निरन्तर परिवर्तनशील और गतिशील प्रक्रिया है। सभ्यता के विकास के साथ इसके विभिन्न रूप और अवधारणा रही है। 19वीं सदी की तुलना में आज विकास की प्रकृति अलग प्रकार की है। विकास एक बहुआयामी अवधारणा है जिसकी निश्चित और सर्वमान्य परिभाषा करना कठिन है। यद्यपि विकास अवधारणा का प्रयोग अनेक बार किया जाता है, किन्तु उसकी स्पष्ट व्याख्या अभी तक नहीं की जा सकी है। सच तो यह है कि "विकास की सन्तोषप्रद सर्वव्यापी परिभाषा न तो होगी, और न ही की जा सकती है।"[1] फिर भी विद्वानों ने इस अवधारणा का अर्थ बताने

1. Brand Commission Report : *North-South : A Programme for Survival*, London, Pan Books, 1980, p. 48.

का प्रयास किया है। **जेराल्ड ई. काइडन** के अनुसार, "विकास शब्द का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं है। अर्थशास्त्री इसे आधुनिक उत्पादकता के रूप में परिभाषित करते हैं; समाजशास्त्री इसका प्रयोग सामाजिक परिवर्तन से करते हैं; राजनीतिक विचारक इसे जनतन्त्रकरण, राजनीतिक क्षमता अथवा विकासशील सरकार के रूप में करते हैं; प्रशासक इसे अधिकारीतन्त्र प्रशासनिक कुशलता एवं क्षमता के रूप में मानते हैं।"[1] ऑक्सफोर्ड शब्दकोष में विकास को 'उच्चतर, पूर्णत्तर और प्रौढ़ स्थिति की ओर बढ़ना' बताया है। **एडवर्ड वीडनर** के शब्दों में, "विकास गतिशील है जो सदैव चलता रहता है। विकास मन की स्थिति, प्रकृति और एक दशा है जो एक निश्चित लक्ष्य के बजाय एक विशिष्ट दिशा में परिवर्तन की गति है।"[2] **जॉन माण्टगोमरी** के अनुसार, "विकास जो अभीष्ट अथवा परिवर्तनशील है।"[3] संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि विकास परिवर्तन की वह स्थिति है जिसके द्वारा परम्परागतपूर्ण स्थिति से हम आधुनिक स्थिति पर आते हैं। विकास सामाजिक गतिविधियों से प्रभावित होता है जो सदैव राष्ट्रीय विकास एवं सामाजिक-आर्थिक प्रगति की ओर निर्देशित होती है।

लोक सेवा और नौकरशाही (Civil Service and Bureaucracy)

लोक सेवा का अर्थ राज्य की प्रशासकीय सेवा की असैनिक शाखा से है। यहाँ लोक सेवा का विस्तृत अर्थ में उपयोग किया गया है जिसमें शासकीय सेवा में कार्यरत (केन्द्र/ राज्य/ स्थानीय) सेवीवर्गों से है। इसमें राजनीतिक, न्यायिक, विधायिका अधिकारी, सार्वजनिक उपक्रम, नियामक इकाइयों में कार्यरत सेवीवर्गों को सम्मिलित नहीं किया गया है। लोक सेवा शासकीय अधिकारियों का एक पेशेवर निकाय है जो स्थायी, वेतनभोगी तथा कार्यकुशल और दक्ष होता है।

नौकरशाही, फ्रांसीसी भाषा के 'ब्यूरो' शब्द से बना है जिसका अर्थ मेज या डेस्क है। इस शब्द का सीधा अर्थ हुआ 'डेस्क सरकार'। नौकरशाही को हम ब्यूरो की, ब्यूरो के द्वारा, ब्यूरो के लिए सरकार कहेंगे। नौकरशाही का सुव्यवस्थित अध्ययन करने वाला प्रथम जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर था। नौकरशाही के अध्ययन से वह अभिन्न रूप से सम्बन्धित है, इसलिए आधुनिक नौकरशाही के अध्ययनकर्ता के लिए इस सम्बन्ध में मैक्स वेबर के विचारों का ज्ञान अपेक्षित माना जाता है। मैक्स वेबर ने नौकरशाही को लोक प्रशासन को सही, स्वस्थ और कुशल बनाने वाला प्रशासनिक संगठन कहा है। मैक्स वेबर के अनुसार नौकरशाही संगठन है जिसकी विशेषताएँ हैं—(i) पद एवं अधिकारी का पृथक्करण, (ii) योग्यता के आधार पर चयन, (iii) अधिकारियों को निश्चित पारिश्रमिक, (iv) कार्यालय के कार्यों को करते समय अधिकारी का अनुशासन एवं नियमन के अधीन होना, (v) पदों का पदसोपान, (vi) संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कार्यों का वितरण, (vii) इन कार्यों के लिए अपेक्षित सत्ता तथा अधिकारों का प्रदत्तीकरण, (viii) नियमों का कठोरता से पालन। उन्होंने नौकरशाही की 10 सूत्रीय व्याख्या की है :

1. वे व्यक्तिगत रूप से तो स्वतन्त्र होते हैं परन्तु शासकीय कार्यों एवं दायित्वों के सम्बन्ध में अपने अधिकारों के अधीन होते हैं।

---

1. J. E. Caiden : *"The Dynamics of Public Administration, Guidelines to Current Transformation in Theory & Practice"*, New York, Rhine & Haat & Winston, 1971, p. 267.
2. E. Weidner : *Development Administration—A New Force for Research*, IPA, Michigan, 1962, p. 99.
3. J. D. Montgomery : *Approaches to Development Politics, Administration and Change*, New York, McGraw Hill, 1966, p. 259.

2. वे सुनिश्चित रीति से विभिन्न पदों के निर्धारित पदसोपान सिद्धान्त के आधार पर संगठित होते हैं।
3. वैधानिक अर्थों में प्रत्येक पद का निश्चित योग्यता क्षेत्र होता है।
4. अनुबन्धीय आधारों के अनुसार पदों पर नियुक्ति की जाती है, अतः सिद्धान्ततः कर्मचारी का खुला चयन होता है।
5. प्रत्याशियों का प्राविधिक योग्यता के आधार पर चयन किया जाता है। अत्यधिक महत्वपूर्ण मामले में या तो परीक्षा ली जाती है या किसी प्राविधिक शिक्षण के प्रमाणपत्र को प्रमाणित मान लिया जाता है या दोनों रीतियों को अपनाया जाता है। इनकी नियुक्ति की जाती है, निर्वाचित नहीं होते।
6. इन अधिकारियों को निश्चित नकद धनराशि वेतन के रूप में मिलती है। अधिकांश को अवकाश के बाद पेंशन प्राप्त होती है। नियुक्तिकर्ता अधिकारी को केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में ही विशेषकर निजी संगठनों में सेवाओं को समाप्त करने का अधिकार होता है, परन्तु अधिकारी को हमेशा पदत्याग करने की स्वतन्त्रता होती है। पदसोपान व्यवस्था में पद की स्थिति के अनुरूप विभिन्न वेतनमान होते हैं। इस सिद्धान्त के अतिरिक्त पद सम्बन्धी दायित्व एवं पदाधिकारी का सामाजिक स्तर वेतनमान को निर्धारित करते समय अवश्य ध्यान में रखा जाता है।
7. पदाधिकारी का पद ही उसका पूर्ण या मूल व्यवसाय होता है।
8. शासकीय सेवा एक व्यवसाय है। वरिष्ठता या योग्यता या दोनों के आधार पर पदोन्नति की व्यवस्था होती है। उच्च अधिकारियों के निर्णय के आधार पर पदोन्नति निर्भर करती है।
9. पदाधिकारी प्रशासनिक साधनों के स्वामित्व से पूर्णरूपेण पृथक रहकर कार्य करता है और अपने पद पर रहते हुए अपने वेतन के अतिरिक्त कोई अन्य आय प्राप्त नहीं कर सकता।
10. पद के संचालन में वह कठोर एवं व्यवस्थित अनुशासन एवं नियन्त्रण के अधीन होता है।[1]

मैक्स वेबर द्वारा आदर्श नौकरशाही रूप की अवधारणा आलोचकों के तीखे प्रहारों के बावजूद नौकरशाही के अध्ययन में अद्वितीय स्थान है। कटु आलोचक फ्रैडरिक ने इनकी "प्रतिभा को स्वीकार करते हुए उसके अध्ययन की महत्वपूर्ण दिशाएँ खोलने वाला बताया है।"[2] वेबर का यह आदर्श मॉडल अनुसन्धान का एक प्रभावशाली साधन है तथा नौकरशाही का विश्लेषण प्रारम्भ करने का स्थल है। यहाँ ध्यान रखना आवश्यक है कि मैक्स वेबर का आदर्श मॉडल यूरोप के देशों के लिए था, न कि अमरीका और विकासशील देशों के लिए। अमरीका में

---

1. Max Weber : *The Theory of Social & Economic Organization*, translated by A. H. Henderson and Talcott Parsons, New York, Oxford University Press, 1947, pp. 333-334.
2. C. J. Friedrich : *Some Observations of Weber's Analysis of Bureaucracy* in Robert K. Merton (Ed.), *Reader in Bureaucracy*, New York, Free Press, 1952, p. 33.

इसे अपनाने के लिए परिवर्तन की आवश्यकता है। वेबर द्वारा 'Trained incapacity' (Veblen), 'Occupational psychosis' (Dewey) और 'Professional deformation' (Warnotte) अवधारणा के विषय में सोचा भी नहीं होगा, जो विकास नौकरशाही के लिए आवश्यक है।

चुनौती (Challenge)

यहाँ भारत जैसे रूढ़िवादी देश जो आधुनिकीकरण और विकासशील देश बनने में अग्रसर हैं, में नौकरशाही, लोक सेवा या प्रशासक—किसी भी नाम से सम्बोधित किया जाय, की भूमिका की चर्चा करेंगे। विकासशील देशों में प्रशासकों की भूमिका विषय न केवल चर्चा बल्कि ध्यान आकर्षित करने वाला विषय बन गया है। वर्तमान में प्रचलित विशेषकर वरिष्ठ लोक सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण और कार्य प्रणाली, वर्तमान चुनौतियों का सामना करने में सक्षम नहीं है। कुछ मान्य अपर्याप्तताओं का अध्ययन की दृष्टि से उल्लेख करने का प्रयास किया गया है।

1. पिछले पचपन वर्षों में पर्याप्त विकास के पश्चात् भी 50% से अधिक लोग विकासशील देशों में (भारत सहित) अत्यन्त गरीबी की स्थिति में रह रहे हैं। उन्हें अभी भी शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, भूमि, रोटी आदि की सुविधा उपलब्ध नहीं है। इनके विकास में प्रमुख बाधा प्रशासनिक है न कि आर्थिक। अधिकांश प्रशासकों में विकास के कार्यक्रमों को लागू करने की क्षमता नहीं है।"[1]
2. वरिष्ठ लोक सेवकों और राजनीतिक सम्भ्रान्तों के बीच सन्तोषप्रद सम्बन्ध नहीं हैं। यह राजनीतिज्ञों द्वारा नीतियों के निर्माण और प्रशासकों के द्वारा पहल न करने के बीच समन्वय के अभाव के कारण है।
3. विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में विकास तथा सामाजिक जटिल समस्याओं से निपटने के लिए व्यावसायिक क्षमता की आवश्यकता है, जो वरिष्ठ प्रशासकों में नहीं है। नौकरशाही स्थानीय समस्याओं, नवीन सोच और विशेषज्ञ सलाह तथा विकास कार्यों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं से निपटने के लिए सक्षम नहीं है।
4. वरिष्ठ प्रशासक विकासशील देशों की राजनीतिक अस्थिरता और सरकार तथा जनता के बीच बदलते सम्बन्धों से निपटने में कठिनाई अनुभव करते हैं। माहेश्वरी का कथन है कि भारतीय संविधान के अन्तर्गत, "प्रशासनिक व्यवस्था में अभिवृत्तिक परिवर्तन (Attitudinal) होना चाहिए था, जनता की सेवा करने के लिए।" किन्तु इस प्रकार का रूपान्तर प्राप्त नहीं हो सका। ब्रिटिश शासन में, "प्रशासन एकान्त, दूर, प्रभावी तथा जनता के साथ अच्छे सम्बन्ध वाला न था।"[2]
5. यह सत्य है कि बड़े पैमाने पर व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण प्रशासनिक कार्यक्षमता और आर्थिक विकास न्यूनतम स्तर से नीचे आ जाता है और कल्याणकारी कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। **के. आर. होप** (Hope) ने कहा है कि "विकासशील देशों में नौकरशाही प्रशासन का इस रूप में रूपान्तर हो गया है जो संस्था के रूप में 'प्रशासन की सर्वोच्चता' के बजाय 'राजनीति की प्रभुता' को प्रधानता देता है।"[3]

---

1. R. K. Sapru : *op. cit.*, p. 272.
2. S. R. Maheshwari : *"Strengthening Administrative Capabilities in India"*, *Public Administration and Development*, Vol. 4, 1984, p. 50.
3. K. R. Hope : *"Administrative Corruption and Administrative Reform in Developing States"*, Corruption and Reform, Vol. 2, No. 2, 1987, p. 128.

आजकल राजनीतिज्ञों द्वारा स्थापित प्रशासनिक तरीकों को बदलकर तथा सत्ता का निजी हित में उपयोग करना शासन का तरीका बन गया है। स्वाभाविक है कि ऐसे वातावरण में काफी प्रशासक स्वयं लाभ उठाने के लिए ऐसे समूह में सम्मिलित हो जाते हैं। ऐसी अपवित्र साझेदारी ईमानदार प्रशासकों के साथ-साथ सामान्य रूप से प्रशासन के लिए भी अहितकारी है। संक्षेप में, विकासशील देशों की जनता की बढ़ती हुई आकांक्षाओं के कारण केन्द्र और राज्य की सरकारों को समाज के समस्त वर्गों के लिए कल्याणकारी नीतियाँ बनाने के लिए बाध्य किया है। परन्तु शासकीय मशीनरी और प्रक्रिया जिनके द्वारा नीतियों को लागू किया जाता है समय की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं होती हैं। जैसे-जैसे सरकार के कार्य बढ़ते और जटिल होते जाते हैं वैसे-वैसे वरिष्ठ प्रशासकों के उत्तरदायित्वों में वृद्धि होती जाती है। उनकी भूमिका जटिल होती जा रही है और उन्हें अधिक दक्षता और क्षमता की आवश्यकता है। उनसे सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रति सजग और गतिशील रहने की अपेक्षा की जाती है। अब उन्हें विकास के प्रति कानूनी कम और परिणाम देने वाले दृष्टिकोण को अपनाना आवश्यक है। उन्हें उत्पादकता की प्राथमिकता, मानवीय संसाधनों का विकास और पूँजी का उचित उपयोग पर अधिक ध्यान देना चाहिए। अतः वरिष्ठ प्रशासकों को विश्व में यह मान्यता प्राप्त है कि वे राष्ट्रीय प्रशासनिक व्यवस्था के विकास और आधुनिकीकरण आयोजन प्रयास के हिस्से हैं।

लोक सेवा की सामान्य भूमिका (General Role of Civil Service)

राज्य के विकास में विभिन्न इकाइयाँ कार्यरत हैं उनमें लोक सेवा एक महत्वपूर्ण परिसम्पत्ति (Asset) है। इसे शासन की चतुर्थ शाखा माना जाता है।[1] शासन की तीन शाखाएं विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका हैं। इन शाखाओं के प्रयोजन स्पष्ट हैं। तब लोक सेवा का क्या प्रयोजन है ? सामान्य रूप से लोक सेवा तीनों शाखाओं से बनी हुई है। प्रत्यक्ष रूप से लोक सेवा सरकार के नियन्त्रण में कार्य करती है। लोक सेवा का प्रमुख कार्य सरकार के दैनिक कार्यों को सम्पन्न करना तथा कानूनों को लागू करना है। विधायिका की परिसीमन के सन्दर्भ में लोक सेवा की निर्णायक भूमिका समझी जा सकती है। जो प्रतिनिधि चुनकर विधायिका में आते हैं उनके पास सामाजिक और आर्थिक जीवन के समस्त पहलुओं की न तो जानकारी होती है और न समझने का समय ही। साथ में क्रियान्वयन करने के तरीके की भी जानकारी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में लोक सेवा अधिक उत्तरदायित्व ग्रहण करती है। जैसा कि विदित है लोक सेवा का प्रमुख कर्तव्य सरकार के निर्णयों को लागू करना है और प्रशासन को कानूनों के दायरे में रखकर चलना पड़ता है न कि राजनीतिज्ञों की इच्छानुसार। लोक सेवा एक अराजनीतिक निकाय है जो निरन्तर कार्यरत रहती है। सरकारें बदलती रहती हैं परन्तु लोक सेवा निरन्तर बनी रहती है। लोक सेवा को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। लोक सेवा नीतियों, निर्णयों और कार्यक्रमों को बनाने में सहायता प्रदान करती है, नीति को व्यावहारिक रूप प्रदान करती है और जनता की बढ़ती हुई माँगों को सँभालती है। वह विधि-निर्माण की पहल नहीं करती है परन्तु कानून को बनाने में विशेषज्ञ सलाह और आवश्यक आँकड़े उपलब्ध कराती है, जिसके बिना कानून बनाना सम्भव नहीं है। नौकरशाही नीति संघर्ष में सदैव विजयी नहीं होती है, परन्तु उसमें उसकी हमेशा सहभागिता उल्लेखनीय बात है।

लोक सेवा विकास प्रक्रिया का आन्तरिक अंग है और इस दिशा में उसकी भूमिका अहम होती है। "यदि हम लोक सेवा के महत्व को विकास प्रयासों में स्वीकार नहीं करते हैं तो यह

1. R. K. Sapru : *op. cit.*, p. 273 (Often the electorate is also regarded as the fifth branch of the government).

हमारी भूल होगी।"[1] अब अधिक से अधिक देश, विशेषकर विकासशील देश, और संयुक्त राष्ट्र संघ लोक सेवा को राष्ट्र-निर्माण और सामाजिक-आर्थिक विकास में एक माध्यम के रूप में उसके महत्व को स्वीकार करने लगे हैं। यह तो केवल लोक संगठनों और उनके उचित प्रबन्ध के द्वारा ही देश के उद्देश्यों को लागू तथा प्राप्त किया जाता है। लोक सेवा जनता को साफ और कुशल प्रशासन उपलब्ध कराती है।[2]

प्रो. भामरी के अनुसार आधुनिक समाजों में नौकरशाही राष्ट्र निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती है। उसकी निष्पादक क्षमता पर सामाजिक-आर्थिक विकास की सफलता और असफलता निर्भर करती है। आज लोक सेवा को न केवल कानून और व्यवस्था बनाये रखने, सीमित लोक सेवाएँ उपलब्ध करने, विकास के लिए कर की वसूली करना ही नहीं है, परन्तु राज्य के महत्वपूर्ण आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रमों को लागू करने के लिए समय और शक्ति लगानी पड़ती है। राज्य के कार्य सीमित से असीमित हो गये हैं। कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना राज्य की प्राथमिकता है। इस कारण राज्य के कार्यों में न केवल अपार वृद्धि हुई है बल्कि उसके कार्य जटिल भी हो गये हैं। नौकरशाही ही एकमात्र साधन है जो लोकतन्त्र में प्रशासनिक निरन्तरता को बनाये रखती है जहाँ राजनीतिक कार्यपालिका मतदाताओं की इच्छानुसार बदलती रहती है। यह संविधान द्वारा प्रदत्त सुरक्षा और सत्ता के क्षेत्र में उनके महत्वपूर्ण स्थान के कारण है। उच्च लोक-सेवक आनुक्रमिक मन्त्रियों के बीच कड़ी होते हैं।

नौकरशाही की भूमिका और बाध्यता (Role of Bureaucracy)

विकास गतिविधियों में संलग्न नौकरशाही, विकास नौकरशाही होती है। समस्त लोक सेवकों को विकास नौकरशाही में सम्मिलित करना भूल होगी। अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विकास नौकरशाही को उनकी भूमिका के अनुसार तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :[3]

1. उच्च स्तर,
2. मध्य स्तर,
3. निम्न स्तर।

1. उच्च स्तर नौकरशाही (वरिष्ठ प्रशासक) (Senior Level Bureaucracy)

उच्च प्रशासकों की संख्या कम होती है परन्तु वे शासन के महत्वपूर्ण हिस्से हैं। समाज में महत्वपूर्ण कार्यों के फलस्वरूप वरिष्ठ प्रशासकों को सम्मान, प्रतिष्ठा तथा शक्ति प्राप्त होती है। लोक सेवा में वरिष्ठ प्रशासक उच्च पदों पर आसीन, प्रबन्ध तथा राष्ट्रीय विकास के प्रति उत्तरदायी एवं नीति निर्माण में प्रभावी भूमिका निभाते हैं।

उच्च स्तर नौकरशाही द्वारा देश के विकास में निभायी जाने वाली भूमिका का अध्ययन करने का प्रयास किया जा रहा है। **सर्वप्रथम**, विकासशील देशों ने स्वतन्त्र होने के पश्चात् जब सत्ता सम्भाली तब उन्हें आर्थिक-सामाजिक विकास के अतिरिक्त अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। राजनीतिक नेतृत्व को विकास योजना के व्यावसायिक पक्ष का ज्ञान नहीं होता है और न ही वे विशेषज्ञ होते हैं। ऐसी स्थिति में वरिष्ठ प्रशासकों की विकास नीति बनाने में

---

1. *Ibid., op. cit.*, p. 274.
2. Dharma Vir : *"Civil Service Living upto Contemporary Reality"*, Man and Development, Chandigarh, Vol. 1, No. 4, December, 1979, p. 65.
3. R. K. Sapru : *op. cit.*, p. 276.

भूमिका बढ़ जाती है। यह नाइजीरिया, भारत, पाकिस्तान आदि देशों के सम्बन्ध में सत्य है। अत: वरिष्ठ प्रशासक नीति निर्माण, समन्वय और प्रशासनिक तन्त्र के सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वित्तीय, प्रशासनिक, विकास आदि मसलों पर उनकी सलाह नीतियों के निर्माण में निर्णायक तत्व सिद्ध होते हैं। इस प्रकार नीति निर्माण में वरिष्ठ प्रशासकों की निर्णायक भूमिका को चुनौती नहीं दी जा सकती। **द्वितीय,** वित्तीय और प्रशासनिक विषयों से सम्बन्धित विभिन्न 'नीति विकल्पों' की सलाह देना वरिष्ठ प्रशासकों का उत्तरदायित्व है। चूँकि राजनीतिज्ञों की तुलना में अधिक जानकारी रखते हैं इसलिए वित्त से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर उचित सलाह देना उच्च प्रशासकों का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। **तीसरे,** नीति निर्माण में भागीदारी के साथ-साथ उन्हें लागू करने तथा निम्न स्तर की नौकरशाही को निर्देशित करना जिससे नीतियों का उचित क्रियान्वयन किया जा सके। वे नीतियों की प्रक्रिया का परिवीक्षण भी करते हैं। **चौथे,** नीति बनने के बाद सबसे महत्वपूर्ण कार्य नीतियों को लागू करना है। प्रशासक की सफलता का आँकलन नीतियों को प्रभावी तरीके से लागू करने पर निर्भर है। इसलिए नीति को किस तरीके से लागू करना है, उस तरीके का प्रशिक्षण लोक सेवकों को देना आवश्यक है। अत: प्रशिक्षण की व्यवस्था करना भी वरिष्ठ प्रशासकों का एक अन्य महत्वपूर्ण दायित्व है। **अन्तिम,** भारत में राजनीतिज्ञ वरिष्ठ प्रशासकों की भूमिका का अलग चित्र प्रस्तुत करते हैं। अधिकांश, राजनीतिज्ञ वरिष्ठ प्रशासकों को राजनीतिज्ञों के अधिदेश (Dictates) को लागू करने का साधन मानते हैं।

सारतत्व यह है कि वरिष्ठ प्रशासक नीति का विश्लेषण और परामर्श के प्रति उत्तरदायी होते हैं। वे विभाग के प्रबन्ध, कार्यक्रमों को लागू करने और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नेतृत्व प्रदान करते हैं। आज लोक सेवा के कृत्यक अधिक, जटिल और विविध होने के कारण वरिष्ठ प्रशासकों को समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए सक्षम और उपलब्धि-प्रवण (Achievements oriented) होना आवश्यक है।

वरिष्ठ प्रशासकों की भूमिका के साथ-साथ उनकी बाध्यता का अध्ययन भी आवश्यक है। **सर्वप्रथम,** प्रगाढ़ अनुभव और ज्ञान की जानकारी के होते हुए, वरिष्ठ प्रशासकों और राजनीतिक नेतृत्व के बीच अनेक विषयों पर एकमत नहीं होता है। ऐसे मतभेद उन्हें 'हाँ-व्यक्ति' (Yes men) बनने के लिए बाध्य करता है। **नवनीत सिन्हा** के कथनानुसार अखिल भारतीय लोक सेवा नागरिक नहीं रही है। **जयन्त कुमार रे** ने अपने अध्ययन में यह बताया है कि "अधिकांश बहुमत भारतीय प्रशासक या तो 'निन्दा करने वाले' (Detractors) होते हैं या 'समझौता करने वाले' (Accommodators)। **दूसरे,** वरिष्ठ प्रशासक कभी-कभी विदेशी विशेषज्ञों या कनिष्ठ अधिकारी वर्ग जो आधुनिक दक्षता में शिक्षित और प्रशिक्षित होते हैं, के द्वारा सुझाये गये नवीन विचारों और नवप्रवर्तनों का विरोध करते हैं। विरोध इसलिए करते हैं जिससे उनका महत्व और प्रतिष्ठा कम न हो जाय। साम्राज्यवादी शासन में प्रशिक्षित परम्परावादी दृष्टिकोण रखने तथा कार्य करने वाले प्रशासक परिवर्तन की सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया में अपने आप को उपयुक्त नहीं पाते हैं। **तीसरे,** वरिष्ठ प्रशासक अपनी वरिष्ठता और उच्च वेतनमान के कारण अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं, न कि, दक्षता और विशिष्ट तकनीकी ज्ञान के कारण। **साथ** में यह आवश्यक नहीं है कि वरिष्ठ प्रशासक हमेशा विकास कार्य में रुचि लें। वे प्राय: यथापूर्ण स्थिति बनाये रखने के पक्षधर होते हैं तथा उचित विकास क्रियान्वयन के कार्य में सत्ता का प्रयोग करने में संकोच करते हैं। वरिष्ठ प्रशासकों की इन बाध्यताओं को दूर करने की आवश्यकता है जिससे विकास कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न किया जा सके।"[1]

---

1. Jayant Kumar Ray : *Administrators in Mixed Polity*, Delhi, Macmillan, 1981, p. 7.

2. मध्य स्तर नौकरशाही (Middle Level Bureaucracy)

मध्य स्तर नौकरशाही में संचालक, ब्लॉक विकास और पंचायत अधिकारी, सह-आयुक्त और प्रथम श्रेणी के तकनीकी अधिकारी आदि अधिकारीगण आते हैं जो आर्थिक-सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मध्य स्तर नौकरशाही के पदाधिकारी राज्य, जिला और स्थानीय स्तर पर कार्यों में समन्वय स्थापित करते हैं। वे नीति-निर्माता और नीति-क्रियान्वयन इकाइयों के बीच संचार माध्यम के रूप में कार्य करते हैं। सच तो यह है कि विकास कार्यक्रमों और योजनाओं की सफलता मध्य स्तर नौकरशाही की कार्य करने की इच्छा क्षमता पर निर्भर है। इन कार्यों को करने के लिए निम्न स्तर नौकरशाही के साथ समन्वय बनाये रखते हैं। साथ ही निम्न स्तर नौकरशाही को कार्यों को करने का प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। विकास कार्यों को सम्पन्न करना मध्य स्तर नौकरशाही का क्षेत्रीय उत्तरदायित्व भी होता है। फलस्वरूप, उनके पास निरीक्षण, परिवेक्षण और निर्देशन देने का दायित्व होता है। इसके अतिरिक्त वे विश्लेषण करके आँकड़े और अन्य उपयोगी सूचना नीति और योजनाओं के निर्माण के लिए सचिवालय और योजना निकायों को भेजते हैं। इसके साथ-साथ वे अन्य कार्यों को भी करते हैं।

3. निम्न स्तर नौकरशाही (Low Level Bureaucracy)

नौकरशाही संगठन में सबसे अधिक संख्या निम्न स्तर नौकरशाही की होती है। विकास कार्यों में भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती है। प्रथम, यही लोग वास्तव में सरकारी कार्यों का संचालन करते हैं और जनता के सम्पर्क में आते हैं। ऐसे सम्पर्कों से विकास कार्यों में भागीदारी की भावना को प्रोत्साहन मिलता है जिससे लोक सेवकों को स्थानीय माँगों और आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त होती है। दूसरे, इसी स्तर के लोक सेवक जनता और संगठनों से कर और राजस्व की वसूली करते हैं। यही नौकरशाही कार्यक्रमों को बनाने के लिए आँकड़े एकत्र करके भेजते हैं। तीसरे, निम्न स्तर नौकरशाही के सेवीवर्ग नवीन तकनीकों को भी सीखते हैं और जिन पर लागू करना होता है उन्हें जानकारी उपलब्ध कराते हैं। परिवार नियोजन, स्वास्थ्य, पशुपालन, वातावरण संरक्षण, पोषण आदि के सम्बन्ध में वे अर्द्ध-विशेषज्ञ होते हैं। चौथे, शहर और ग्रामीण क्षेत्रों में दी जाने वाली विभिन्न कार्यक्रमों और परियोजनाओं को लागू करने का उत्तरदायित्व इसी नौकरशाही का होता है। ऐसी योजनाएँ हैं—राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, नवीन शिक्षा नीति, परिवार नियोजन, राष्ट्रीय एकीकृत विकास कार्यक्रम आदि। इस प्रकार योजनाओं और कार्यक्रमों को लागू करने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

नौकरशाही में समयानुसार बदलने की क्षमता (Capacity to Change)

भारत जैसे विकासशील देश में नौकरशाही संक्रमणकालीन चरण में है : साम्राज्यवादी युग में 'सामान्यवादी' कानून और व्यवस्था वाली नौकरशाही थी। परन्तु अब विकास गतिविधियों के कारण विकासशील देशों में कार्यरत नौकरशाही में नवीन आवश्यकताओं के अनुसार बदलने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। नौकरशाही संगठनात्मक, प्रक्रियात्मक और अपने कार्यात्मक क्षेत्र में पहले की अपेक्षा बदली है। भले ही यह बदलाव मूल न होकर समय के अनुसार थोड़ा समायोजन ही क्यों न हो। विकासशील देशों में नौकरशाही के संगठन और कार्यों में जो परिवर्तन देखने को मिलता है वह मुख्यतः बाध्यता के कारण है। यह बाध्यता सामाजिक क्रान्ति के नवीन आदर्श, उद्देश्य, सोच जिसके कारण समाज का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास किया जा सके। आज समाज की मुख्य प्राथमिकता राष्ट्र तत्व और राष्ट्रीय अखण्डता की भावना उत्पन्न करने के साथ राष्ट्रीय विकास करना भी है। ऐसी परिस्थिति में नौकरशाही को समाकलनात्मक (Integrative role) निभाना चाहिए न कि केवल यन्त्रीय रूप

में (Instrumental)। दूसरे शब्दों में, अब नौकरशाही को विकास कार्यक्रमों में पहले की अपेक्षा सक्रिय भूमिका निभाने की आवश्यकता है। यह सक्रियता योजना और नीति बनाने तथा उन्हें लागू करने में ज्यादा आवश्यक है। पिछले पचास वर्षों का अनुभव यह बताता है कि भारत जैसे विकासशील देश में नौकरशाही की सोच, कार्य करने की प्रणाली में बदलाव अवश्य आया है। यद्यपि यह बदलाव तीनों स्तर की नौकरशाही में हमारी मान्यताओं के अनुसार नहीं हुआ है। हम आशा करते हैं कि भविष्य में इस दिशा में और सुधार होगा।

भारत की नौकरशाही की कुछ अपनी बाध्यताएँ हैं जिनमें सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। ये बाध्यताएँ हैं—प्रथम, नौकरशाही और राजनीतिज्ञों के बीच बढ़ता हुआ अपवित्र बन्धन का होना है। भारत में लोकतन्त्र का भविष्य बहुत कुछ 'पूर्ण संगठित नौकरशाही' के बढ़ते आकार को रोकने की क्षमता पर निर्भर करता है। परन्तु यह उत्तरदायित्व आत्म-सन्तुष्टि और आधे सक्षम राजनीतिज्ञों के पास है जो कानून की अपेक्षा विवेक द्वारा कार्य करते हैं।[1] यद्यपि अधिकांश अध्ययन यह बताते हैं कि राजनीतिज्ञ परिवर्तन के समर्थक और प्रशासक समस्थिति बनाये रखने के पक्षधर हैं। यह धारणा पूर्व में प्रचलित मान्यता कि विकास कार्य में नौकरशाही बाधक है और उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है, के विपरीत है। परिणामस्वरूप इन्दिरा गाँधी ने 'प्रतिबद्ध लोक सेवा' का समर्थन किया। अतः भारत में राजनीतिज्ञ और नौकरशाही के बीच बढ़ते हुए सम्बन्ध पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है। द्वितीय, मध्य और निम्न स्तर के नौकरशाही का व्यवहार जनता के प्रति अहंकारी और हठी होता है। नौकरशाही के इस अहंकार के कुछ कारण हैं—(1) ब्रिटिश परम्पराओं का जीवित रहना, (2) नौकरशाही की यह भावना कि वे शासक वर्ग हैं, (3) नौकरशाही में उच्च वर्गों का वर्चस्व, (4) पश्चिमी शिक्षा जिसमें पश्चिमी शिष्टाचार को प्राथमिकता, (5) प्रशिक्षण में जनता की सेवा करने को कम महत्व देना, और (6) अत्यधिक पुलिस शक्ति।[2]

नौकरशाही में अहम् भावना के साथ-साथ यह सोच विद्यमान है कि वे उच्च वर्ग के हैं और स्वामी हैं न कि सेवक। वर्तमान नौकरशाही के कुछ दुःखित कारण हैं—(i) अपने कामों में सम्बद्ध रहने की कमी, (ii) प्रत्येक के प्रति अधिक दोषदर्शी और निन्दनीय दृष्टिकोण, (iii) निर्णय लेने की जिम्मेदारी को गम्भीरता से न लेना, (iv) जनता से मिलने की अनिच्छा तथा प्रत्येक फाइल को गुप्त और छिपा कर रखना।[3] तीसरे, मध्य और निम्न स्तर नौकरशाही में पर्याप्त भ्रष्टाचार व्याप्त है। भ्रष्टाचार हमारे समाज में कैन्सर के समान प्रवेश कर गया है। यह राजनीतिज्ञ और नौकरशाही दोनों में देखने को मिलता है। अन्तिम, इस स्तर पर नौकरशाही विकास कार्यों के प्रति आशानुरूप प्रतिबद्ध नहीं होती है। जनता से दूर रहते हैं।

विकास के लिए नौकरशाही (Bureaucracy for Development)

ऐसा नहीं कि वेबर के आदर्श मॉडल के लक्षण, जैसे, पदसोपान, विशिष्टीकरण, प्रशिक्षण, योग्यता, कानून के अनुसार कार्य, आदि विकास प्रशासन में विद्यमान नहीं होते हैं। विकास प्रशासन प्रशासनिक संगठन और प्रक्रिया में नियोजित परिवर्तन और विकास की नवीन

---

1. O. P. Dwivedi : *"Administrative Heritage, Morality and Challenges in the Subcontinent since British Raj"*, Public Administration & Development, Vol. 9, 1989, pp. 245-52.
2. Y. K. Malik : *Local Elites and Bureaucrats in a North Indian Urban Community*, IJPA, Vol. XXXI, No. 6, Jan.-March, 1985, p. 11.
3. P. C. Alexander : *Role of Civil Service : Then and Now Indian Management*, Vol. 23, No. 7, July, 1984, pp. 6-10.

धारणाओं और उद्देश्यों को प्रभावशाली ढंग से प्राप्त करना चाहता है। इसमें नौकरशाही की नीतियों, कार्यक्रमों, प्रक्रियाओं, विभिन्न क्रामिक में सुधार और कार्य करने के तरीकों में गुणात्मक और मात्रात्मक परिवर्तन सम्मिलित हैं। विकास के सन्दर्भ में यह आवश्यक है कि नौकरशाही न्यायपूर्वक संगठित, अधिक बहुमूल्य कार्य सम्बन्धी और उपलब्धि केन्द्रित हो। नौकरशाही तो रहेगी क्योंकि यह किसी भी संगठन के लिए अपरिहार्य अंग है, परन्तु उसे एक नवीन अर्थ, और नवीन विचारशक्ति प्रदान करने की आवश्यकता है। इसका अर्थ हुआ कि नौकरशाही संगठन परिणाम देने वाली और कार्यपथ दिखाने वाली, निष्पादन और उपलब्धि से सुसज्जित, तथा परिणाम के क्षितिज पर नेत्र केन्द्रित करने वाली होनी चाहिए। अब पुरानी मान्यताओं और प्रक्रियाओं के आधार पर नौकरशाही कार्य नहीं कर सकती। उसे विकास के युग के साथ चलने की आवश्यकता है। अब हमें शीघ्र निर्णय और प्रभावी क्रियान्वयन करने वाले प्रबन्धक और नीति निर्माताओं की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त विशेषज्ञ स्टाफ की भी आवश्यकता है। अब 'न्यूनतम आवश्यकता की अपेक्षा अधिकतम सम्भव' सत्ता प्रदत्त करने की जरूरत है।[1] दूसरों पर अविश्वास की भावना पर आधारित, अति केन्द्रीकरण, विकास के लिए हानिकारक है। नौकरशाही के लिए आवश्यक है कि दूसरों पर विश्वास करें और उन्हें उत्तरदायित्व सौंपें। संगठन के अन्दर उसके लक्ष्यों की जानकारी के लिए प्रभावी संचार व्यवस्था का होना जरूरी है। लोकतन्त्र में जनता की सहभागिता के बिना विकास कार्यों में सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अतः विकेन्द्रीकरण (सत्ता) समय की माँग है। नौकरशाही को विकास कार्यों की सफलता के लिए मानवीय तत्व की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अब प्रशासन और जनता के बीच अच्छे सम्बन्ध आवश्यक हैं। विकास के कार्यों को संचालित करने वाले सेवीवर्गों को विकास कार्यों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, जिससे अपेक्षित परिणाम प्राप्त किये जा सकें। यदि विकास नौकरशाही प्रभावशील होना चाहती है तो उसे परम्परागत दृष्टिकोण को त्याग कर नवीन सोच, संगठन में परिवर्तन, कार्य करने के तरीके, सेवीवर्ग के चरित्र में सुधार, आदि बातों में परिवर्तन लाना होगा। संक्षेप में, जैसा कि बी. के. डे (B. K. Dey) ने कहा है कि "इस प्रौद्योगिकी के युग में विकासशील नौकरशाही में नवीन दृष्टि, नवीन उत्साह, नवीन दृष्टिकोण और व्यावसायिक दक्षता होनी चाहिए।"[2] अन्त में, "विकासशील नौकरशाह को विचारक के समान विश्लेषक, लक्ष्य निश्चित करने वाले के समान सर्जनात्मक और गतिशील, नियोजनकर्ता के समान अर्थ क्रियात्मक और कार्यक्रम के समान नवप्रवर्तक होना चाहिए।"[3]

नौकरशाही की विकास भूमिका (Development Role of Bureaucracy)

स्वतन्त्रता के बाद भारत में नौकरशाही से यह अपेक्षा की गयी कि वह राष्ट्र के विकास में सकारात्मक, सर्जनात्मक और स्वस्थ भूमिका निभायेगी। सामान्यतः विकास कार्य में नौकरशाही की महत्वपूर्ण भूमिका स्वस्पष्ट है फिर भी विकासशील देशों में इसकी भूमिका का विशेष महत्व है। विकास में नौकरशाही की भूमिका का अध्ययन अग्रलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है :

---

1. *Administrative Reforms Commission, Report on Delegation of Financial and Administrative Powers*, GOI., New Delhi, 1969.
2. B. K. Dey : "*Bureaucracy & Development : Some Reflections*", article written in Development Administration, Published by IJPA, New Delhi, 1984, pp. 75-96.
3. *Ibid.*, p. 96.

1. नौकरशाही और राजनीतिक विकास (Bureaucracy & Political Development)

नौकरशाही जिस राजनीतिक व्यवस्था में कार्य करती है उसकी उप-प्रणाली कहलाती है। इसलिए, राजनीतिक प्रणाली की प्रकृति नौकरशाही के व्यवहार को उचित रूप देती है। अतः विभिन्न राजनीतिक प्रणाली में नौकरशाही का व्यवहार अलग-अलग होता है।

राजनीतिक विकास का आशय जनता की राजनीतिक स्थिति में सुधार करना है। राजनीतिक स्थिरता, नागरिक और राजनीतिक अधिकार, राजनीतिक सत्ता में समान अवसर, राजनीतिक भावना आदि राजनीतिक विकास के आवश्यक तत्व हैं। प्रो. रिग्स के अनुसार राजनीतिक विकास, "राजनीतिकरण की प्रक्रिया, राज्य की गतिविधियों में तथा शक्ति गणना में जनता की बढ़ती हुई सहभागिता है।"[1]

नौकरशाही की राजनीतिक विकास में भूमिका निभाने की क्षमता आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक वातावरण पर निर्भर करती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रशासनिक कर्तव्य और राजनीतिक कर्तव्य में अन्तर किया जा सकता है। राजनीतिक कर्तव्य में नीति निर्माण, लक्ष्य की प्राथमिकता तय करना, संसाधन उपलब्ध कराना और लोक प्रशासन को कार्य करने का आवश्यक परामर्श देना है। नौकरशाही का कर्तव्य राजनीतिक निर्देशन के अन्तर्गत नीतियों और योजनाओं का क्रियान्वयन करना है। किन्तु राजनीतिक ढाँचे में नौकरशाही की निश्चित स्थिति के कारण वह और अधिक शक्ति का प्रयोग करती है।

नौकरशाही लोकतन्त्र को स्थिरता प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विकासशील देश सामाजिक-आर्थिक विकास के जो लक्ष्य निर्धारित करते हैं, उन्हें वास्तव में, नौकरशाही ही क्रियान्वित करती है। विधायिका द्वारा जो कानून बनाये जाते हैं उन्हें लोक सेवा ही कार्यपालिका के निर्देशन में लागू करती है। देश के चुनाव भी लोक-सेवक कराते हैं। इस प्रकार लोकतन्त्र की सफलता के लिए कुशल और प्रभावशील लोक सेवा की आवश्यकता है जो संवैधानिक सरकार के प्रति वफादार हो। नौकरशाही के पर्याप्त सम्बद्ध के बिना राजनीतिक विकास प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इसके लिए नौकरशाही को लक्ष्यों को तय करने, लागू करने और महत्वपूर्ण नीति निर्देशन देने में अपनी भूमिका निभानी होगी। शिक्षा, कृषि, यातायात, सूचना और संचार, रक्षा और राष्ट्रीय महत्व के अन्य विषयों का आधुनिकीकरण, नौकरशाही का राजनीतिक विकास में सम्बद्ध हुए बिना सम्भव नहीं है। इस प्रकार नौकरशाही न केवल राजनीतिक विकास के लिए आवश्यक है अपितु, महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में नौकरशाही ने सशक्त कार्यपालिका, विधायिका, दल-प्रणाली और अन्य राजनीतिक संस्थाओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है जो अब नौकरशाही के बढ़ते हुए व्यवहार पर अंकुश लगा रहे हैं। लोकतान्त्रिक सरकार के राजनीतिक विकास के जीने के लिए आवश्यक तत्व है कुशल, प्रभावशील, निष्पक्ष, जो आर्थिक-सामाजिक विकास में बदलाव ला सके। इसके लिए नौकरशाही और राजनीतिज्ञों में पवित्र घनिष्ठ सम्बन्ध की आवश्यकता है। दोनों में सन्तुलन बनाये रखने के लिए 'सशक्त संवैधानिक प्रणाली' की आवश्यकता है जो नौकरशाही पर प्रभावी नियन्त्रण रखने में सक्षम हो।

2. नौकरशाही और आर्थिक विकास (Bureaucracy & Economic Development)

आर्थिक विकास, विकास का एक महत्वपूर्ण अंश है। सामान्य रूप से इसका अर्थ देश की जनसंख्या की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि है। आर्थिक विकास में गरीबी को दूर करना,

---

1. F. W. Riggs : *Bureaucrats and Political Development : A Paradoxical View'*, in La Palombra (Ed.), *op. cit.*, p. 139.

बेरोजगारी एवं आय की असमानता में कमी लाना और सामान्य जनता के आर्थिक स्तर में सुधार करना है। स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि आर्थिक विकास में नौकरशाही की क्या भूमिका है ?

आर्थिक विकास में नौकरशाही की विविध और अर्थपूर्ण भूमिका है। प्रथम, नौकरशाही ऐसी स्थितियों की स्थापना करने में सहायता प्रदान कर सकती है जिसमें आर्थिक विकास हो सके। ऐसी परिस्थितियों का सम्बन्ध कानून और संवैधानिक प्रतिमानों, आर्थिक जटिलताएँ और कानून और व्यवस्था से है। द्वितीय, चूँकि नौकरशाही नीति-निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती है, अत: वह आर्थिक नीति को ऐसी दशा प्रदान कर सकती है, जिससे अधिक आर्थिक विकास सम्भव हो सके। तीसरे, नौकरशाही आर्थिक कार्यक्रमों को लागू करने के लिए गतिशील और बदलने योग्य व्यूह रचना अपना सकती है। कार्यक्रमों का सफल क्रियान्वयन नौकरशाही पर निर्भर करता है। अन्तिम, लोक सेवा अपने कार्यों के परिणामों की समीक्षा कर सकती है।

सचमुच, नौकरशाही इतनी आवश्यक है कि उसके बिना आर्थिक विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। सार्वजनिक सेक्टर उपक्रमों और उनके सरकार के साथ सम्बन्ध इस प्रकार के बनाये गये हैं जिसमें वरिष्ठ प्रशासकों का नीति निर्माण में पर्याप्त प्रभाव होता है। ऐसे उपक्रमों पर मन्त्री और अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों का प्रभावी नियन्त्रण होता है। आर्थिक विनियमन में राज्य पदाधिकारियों को भी पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। सार्वजनिक सेक्टर के विकास, निवेश, स्थान, विदेशी सहयोग, आदि बातों का निर्णय सरकार और अधिकारियों के पास होता है। अत: आर्थिक विकास और प्रशासनिक प्रणाली एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं और दोनों आधुनिक प्रक्रिया के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार विकास के लिए एक ठोस पर्याप्त 'आर्थिक आधार' की आवश्यकता है।

3. नौकरशाही और सामाजिक विकास (Bureaucracy & Social Development)

सामाजिक विकास एक विस्तृत अवधारणा है जो आर्थिक विकास के काफी निकट है। वास्तव में समाज के लिए सामाजिक और आर्थिक विकास साथ-साथ होना चाहिए। इसलिए हम विकास में सामाजिक-आर्थिक विकास को सम्मिलित करते हैं। सामाजिक विकास में स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, निवास, सांस्कृतिक सुविधाएँ, बालक को संरक्षण, स्त्रियों की स्थिति में सुधार, मजदूर की स्थिति में सुधार आदि सामाजिक बुराइयों को दूर करने के प्रयासों को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में नौकरशाही निर्णायक भूमिका निभा सकती है। प्रथम, सरकार को सामाजिक विकास के एक नवीन सामाजिक वातावरण निर्माण करने की आवश्यकता है। विकास नौकरशाही सरकार को सामाजिक विकास की योजनाओं और कार्यक्रमों को बनाने में सहायता प्रदान कर सकती है। द्वितीय, लोक-सेवकों का यह कर्तव्य है कि सरकार द्वारा सौंपे गये सामाजिक कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू करें। तीसरे, सरकार द्वारा सामाजिक कार्यक्रमों और नीतियों के सम्बन्ध में जनता को जानकारी प्रदान करना लोक सेवा का कर्तव्य है।

संक्षेप में विकास प्रशासन के सन्दर्भ में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अत: विकास के लिए तीनों में सन्तुलन बनाये रखने की आवश्यकता है जिससे विकास सम्भव रूप से हो सके।

4. नौकरशाही की नवीन भूमिका (New Role of Bureaucracy)

विकास के युग में नौकरशाही को अपनी परम्परागत सोच और कार्यप्रणाली को छोड़कर नवीन भूमिका निभाने की आवश्यकता है। अब उन्हें देश के विकास में विकास प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने की आवश्यकता है। अधिकांश कार्यक्रम जनता के कल्याण के लिए होते हैं अत:

नौकरशाही को अब जनता के साथ काम करने की आवश्यकता है। अब विकास नौकरशाही को जनता को उत्साहित, कार्यक्रमों की जानकारी, उनका सहयोग प्राप्त करने और सेवक के रूप में कार्य करने की जरूरत है। लोक-सेवकों को 'विकास कार्यकर्ता' के रूप में जनता के पास जाने की आवश्यकता है, न कि, कार्यालय में बैठकर आदेश देने की। राष्ट्रीय विकास में प्रभावशाली माध्यम के रूप में कार्य करने के लिए नौकरशाही में समयानुसार परिवर्तन एक अनिवार्यता है। विज्ञान और तकनीकी ज्ञान, जनसंख्या विस्फोट, दूषित वातावरण, सामाजिक-आर्थिक विकास ने मानव जीवन के समस्त रूपों को बदल दिया है। वर्तमान गतिशील युग में देश के विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रशासन और लोक सेवा में सामयिक और गतिशील परिवर्तन की माँग है। इसके लिए विकास नौकरशाही के ढाँचे में निम्न परिवर्तन की जरूरत है :

(i) जो क्रियान्वयन में लोचशील हो;

(ii) समयानुसार बदलने की क्षमता और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना;

(iii) खुली हुई नीति-निर्माण प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना जो विचार-विमर्श पर आधारित हो;

(iv) मानवीय मूल्यों पर आधारित सेवा और सबके साथ सम-व्यवहार, विशेषकर कमजोर समुदाय के लोगों के प्रति; और

(v) ग्राहक अभिविन्यस्त (Oriented) पर केन्द्रित दर्शन।

5. नौकरशाही और नीति-निर्धारण (Bureaucracy & Determination of Policy)

नीति-निर्धारण की प्रक्रिया शासन की केन्द्रीय प्रक्रियाओं में से एक है। **एपल्बी** के अनुसार नीति-निर्माण ही लोक प्रशासन का सार है। किसी कार्य-प्रणाली की योजना के कार्य में नीतियों का प्रयोग महत्वपूर्ण होता है। नीतियाँ ऐसी प्रमाणिक मार्गदर्शक हैं जो प्रबन्धकों को योजना बनाने, कानूनी आवश्यकताओं के अनुकूल कार्य करने तथा वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता देती हैं। सच तो यह है कि नीतियाँ उद्देश्यों को निश्चित अर्थ प्रदान करती हैं। किसी भी संगठन के उद्देश्य प्रायः सामान्य भाषा में लिखे रहते हैं। नीतियाँ इन्हीं उद्देश्यों को मूर्त रूप प्रदान करती हैं।

टैरी के अनुसार, "नीति उस कार्रवाई का शाब्दिक, लिखित या विहित बुनियादी मार्गदर्शक हैं, जिसे प्रबन्धक अपनाता है तथा जिसका अनुगमन करता है।"[1] **डिमॉक** के शब्दों में, "नीतियाँ सजगता से निर्धारण आचरण के वे नियम हैं जो प्रशासकीय निर्णयों को मार्ग दिखाते हैं।"[2] नीति और प्रशासन के बीच एक निश्चित भेद करने का प्रयत्न **वुडरो विल्सन** ने 1887 में प्रकाशित अपने लेख *'प्रशासन का अध्ययन'* में किया था। उनके विचार में नीति-निर्माण एक राजनीतिक कार्य है, जबकि प्रशासन केवल नीतियों को लागू करने से सम्बन्ध रखता है। उनके शब्दों में, "प्रशासन का क्षेत्र व्यापक है। यह राजनीति की हड़बड़ी तथा कलह से अलग होता है।"[3] प्रशासन तो राजनीति के उचित क्षेत्र से बाहर रहता है। 1926 में **ह्वाइट** ने अपनी पुस्तक *Introduction to the Study of Public Administration* के प्रथम संस्करण में राजनीति तथा प्रशासन के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींची।

---

1. Terry, G. R. : *Principles of Management*, 1954, p. 171.
2. Dimock, M. E. & Dimock, G. O. : *Public Administration*, 1956, p. 82.
3. Quoted in Waldo, D. : *Ideas and Issues in Public Administration*, p. 71.

अब इन दोनों के बीच के अन्तर को अस्वीकार कर दिया गया है। लोगों की राय इस मत के अनुरूप रही है कि प्रशासन को नीति से पूर्णतः अलग नहीं किया जा सकता और न ही नीति प्रशासन को त्याग सकती है। लूथर गुलिक इस मत के अग्रणी समर्थक थे। इन सब में एपल्बी का नाम प्रायः इस तर्क के साथ जुड़ा है कि राजनीति और प्रशासन अलग नहीं किये जा सकने वाले युगल (Twins) हैं। उनके अनुसार प्रशासन राजनीति है, क्योंकि लोक हित के प्रति उत्तरदायी होना उसके लिए आवश्यक होता है। उनके ही शब्दों में, "प्रशासकगण निरन्तर भविष्य के लिए नियम निर्धारित करते रहते हैं, और प्रशासक ही निरन्तर यह निश्चित करते हैं कि कानून क्या है, कार्रवाई के अर्थ में इसका तात्पर्य क्या है तथा प्रचलित और भावी आदान-प्रदान के सिलसिले में दोनों पक्षों अर्थात् प्रशासन और नीति के अपने अलग-अलग अधिकार क्या होंगे। प्रशासक एक अन्य प्रकार से भी नीति-निर्माण में भाग लेते हैं, वे विधानमण्डल के लिए प्रस्तावों एवं सुझावों का स्वरूप निश्चित करते हैं। यह नीति-निर्माण का एक भाग होता है।"[1] इस प्रकार सार्वजनिक अधिकारी (नौकरशाही) आज नीति-निर्धारण तथा नीति-निष्पादन दोनों ही कार्यों में संलग्न हैं, और सरकार ऊपर से नीचे तक प्रशासन और राजनीति का एक सम्मिश्रण बन गयी है। **पीटर ओडेगार्ड** (Odegard) का कथन है कि "नीति तथा प्रशासन राजनीति के जुड़वाँ बच्चे हैं जो एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।"

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अब नौकरशाही अनेक तरीकों से नीति-निर्माण प्रक्रिया में संलग्न है। सिद्धान्ततः लोक-सेवकों की भर्ती राजनीतिज्ञों के निर्णयों को लागू करने के लिए की जाती है, परन्तु व्यवहार में वे नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नौकरशाही संसदीय प्रणाली में नीति-निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती है। उच्च श्रेणी लोक-सेवक नीति-निर्माण में विशेष भूमिका निभाते हैं क्योंकि उनका साधनों की तुलना में लक्ष्यों की ओर विशेष ध्यान रहता है।

आज के जटिल औद्योगिक समाजों में नीति सम्बन्धी बहुत-से मामलों में प्राविधिकता एवं जटिलता, लगातार नियन्त्रण की आवश्यकता और विधायकों के पास समय तथा सूचना की कमी के कारण प्रशासनिक इकाइयों को, जिन्हें औपचारिक रूप से नियम निर्माण करने वाला समझा जाता था, अब पर्याप्त विवेकाधिकार प्राप्त हो गये हैं। अमरीका और ब्रिटेन में ये इकाइयाँ विधि निर्माण के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्तावों का प्रमुख स्रोत है। लोक-सेवक तीन प्रकार से नीति-निर्माण से सम्बद्ध होते हैं। **प्रथम,** नीति की व्यावहारिकता के सम्बन्ध में उन्हें मन्त्रियों को तथ्य, आँकड़े और आलोचना सामग्री की पूर्ति करनी पड़ती है और यदि नीति-निर्माण के लिए विधायकों द्वारा पहल होती है तो विधायकों को यह कार्य करना पड़ता है। संसद सदस्य या मन्त्री गैर-पेशेवरों का परिवर्तनशील निकाय होता है जिनमें राजनीतिक निपुणता या जनप्रियता तो हो सकती है लेकिन उनमें विद्वत्ता या अनुभव की कमी होती है। इसलिए उन्हें लोक-सेवकों पर निर्भर रहना पड़ता है तथा उनके सुझावों को महत्व देना पड़ता है। **दूसरे,** नीति अधिनियम के लिए अक्सर प्रशासन द्वारा पहल की जाती है। इसका कारण यह है कि लोक-सेवक ही निरन्तर रूप से जनता के सम्पर्क में रहते हैं इसलिए वे नीति के कार्यान्वयन के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को भलीभाँति समझने की स्थिति में होते हैं। नौकरशाही द्वारा उन कठिनाइयों को भी दूर करने या वर्तमान नियम में संशोधन करने के सुझाव एवं प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं। **तीसरे,** समय और ज्ञान की कमी के कारण विधानमण्डल आधारभूत अंश में ही अधिनियमों को पारित करते हैं और उनको विस्तृत रूप प्रदान करने का काम प्रशासन पर छोड़ देते हैं। इन अधिनियमों

---

1. Appleby, P. H. : *Policy & Administration*, 1949, p. 7.

को लागू करने के उद्देश्य से प्रशासन नियमावली, विनियम और उप-विधि बनाता है जो नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। नीति-निर्माण में नौकरशाही का निम्न योगदान है— प्रथम, नीति-निर्माता को अस्पष्टता से बचाने में सहायता प्रदान कर सकते हैं। लागू करने वाली नीति की जानकारी दे सकते हैं। द्वितीय, सामान्य नीति और उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने में मदद कर सकते हैं। तीसरे, अच्छी नीति-निर्माण में तर्कसंगत दृष्टिकोण और आधुनिक प्रबन्ध तकनीक का प्रयोग कर सकते हैं। अन्तिम, नीति-निर्माण की विभिन्न इकाइयों में समन्वय स्थापित करके उसकी सफलता सुनिश्चित कर सकते हैं।

भारत में नीति-निर्माण के सम्बन्ध में लोक-सेवकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। हमारे संविधान में नीति चयन में सुझाव देने का संवैधानिक उत्तरदायित्व उच्च लोक-सेवकों पर होता है। जैसे भारत सरकार का सचिव स्वयं या मन्त्रियों को ऐसे निर्णय लेने का सुझाव देता है जो नीति-निर्धारण को बनाने में लेने पड़ते हैं या जो दिन-प्रतिदिन क्रियाविधि में लागू नहीं किये जा सकते हैं। ऐसे निर्णय नीति के क्षेत्र को स्पष्ट करते हैं तथा इसको नयी और विशेष स्थितियों में अन्तिम रूप से लागू करते हैं। फिर भी वे व्यापक स्तर पर प्रचलित नीतियों के संचालन पर मन्त्रालयी उपयोग के व्याख्यात्मक सामग्री से सम्बद्ध रहते हैं। विभिन्न नीति-उपागमों का प्रशासनिक जटिलताओं एवं वित्तीय मामलों पर सलाह भी देते हैं। दूसरे, उच्च लोक-सेवकों को अपने उस ज्ञान पर लगभग एकाधिकार प्राप्त होता है जो वे अपनी शैक्षिक योग्यता एवं लोक-विकास नीतियों के संचालन के अनुभव से प्राप्त करते हैं। उनके विशाल अनुभव और ज्ञान उन्हें विकास सम्बन्धी नीति प्रस्तावों की वित्तीय एवं प्रशासनिक कठिनाइयाँ, प्रभावित गुटों की सम्भावित प्रतिक्रियाओं तथा नीतिगत समस्याओं से निपटने की नवीन विधियों के बारे में अधिक प्रभावी स्थितियों से तर्क प्रस्तुत करने में समर्थ बनाते हैं। यह तथ्य कि वे नीति निर्णयों के लिए आँकड़े एकत्र करते हैं, सम्बद्ध समस्या का विश्लेषण करते हैं एवं नीतिगत विकल्पों का चयन करते हैं, विकास नीति पर प्रभाव डालता है।

8

नीति-निर्माण और नौकरशाही

[POLICY MAKING & BUREAUCRACY]

इस अध्याय का अध्ययन निम्न दो शीर्षकों में किया जा रहा है :

1. नीति-निर्माण,
2. नीति-निर्माण में नौकरशाही का योगदान।

(1) नीति-निर्माण

[POLICY MAKING]

महत्व (Importance)

नीति-निर्धारण की प्रक्रिया शासन की केन्द्रीय प्रक्रियाओं में से एक है। ऐपल्बी के कथनानुसार, नीति-निर्माण ही लोक प्रशासन का सार है। किसी कार्यप्रणाली की योजना के कार्य में नीतियों का प्रयोग महत्वपूर्ण होता है। नीतियाँ ऐसी प्रामाणिक मार्गदर्शक हैं जो प्रबन्धकों को योजना बनाने, कानूनी आवश्यकताओं के अनुकूल कार्य करने तथा वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता देती हैं। नीतियाँ निष्पादक को अपने क्रियाकलापों को "कार्य के एक निश्चित ढाँचे" के भीतर बनाये रखने में सहायता देती हैं। सच तो यह है कि नीतियाँ उद्देश्यों को निश्चित अर्थ प्रदान करती हैं। किसी भी संगठन के उद्देश्य प्रायः सामान्य भाषा में लिखे रहते हैं। नीतियाँ इन्हीं उद्देश्यों को मूर्त रूप प्रदान करती हैं।

अर्थ (Meaning)

इस शब्द का प्रयोग प्रायः शिथिलता से किया जाता है। इसे गलती से नियम, रीति-रिवाज तथा विनिश्चय की खिचड़ी समझ लिया जाता है, जबकि सत्य यह है कि नियम मार्गदर्शक होते हैं, वे करने और न करने योग्य कार्यों में अन्तर करते हैं, किन्तु नियम नीतियों के विपरीत कठोर तथा विशिष्ट होते हैं। रीति-रिवाज की परिभाषा 'कार्य के एक स्वाभाविक प्रवाह' के रूप में की जाती है। यही वह तरीका है जिससे वस्तुतः कार्य किया जाता है। रीति-रिवाज विकसित होते हैं जबकि नीति जान-बूझकर किये गये कार्य का परिणाम होती है। कुछ भी हो, रीति-रिवाज तथा नीतियों का सदा मेल आवश्यक नहीं होता। निर्णय प्रायः नीति के क्षेत्र के भीतर ही किया जाता है; यह बहुत सम्भव है कि किसी नीति के कारण लगातार कई प्रकार के निर्णय लेने पड़ जायें। इसी प्रकार नीति तथा रीति या प्रक्रिया के बीच अन्तर भी रखना चाहिए। नीति का सम्बन्ध मौलिक मामलों से है जबकि रीति का सम्बन्ध किसी नीति को प्रभावकारी बनाने के तरीके से होता है। टैरी के शब्दों में, "नीति उस कार्रवाई की शाब्दिक, लिखित या विहित

बुनियादी मार्गदर्शक है, जिसे प्रबन्धक अपनाता है तथा जिसका अनुगमन करता है।"[1] डिमॉक नीतियों की परिभाषा इस प्रकार करते हैं : "नीतियाँ सजगता से निर्धारित आचरण के वे नियम हैं जो प्रशासकीय निर्णयों को मार्ग दिखाते हैं।"[2] नीति एक ओर तो लक्ष्य या उद्देश्य से और दूसरी ओर कार्य-संचालन के लिए उठाये गये कदमों से भिन्न होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, देश में प्रत्येक मनुष्य को शिक्षित बनाना एक लक्ष्य है; अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा एक नीति है जो इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बनायी गयी है, और स्कूल खोलना तथा अध्यापकों को प्रशिक्षित करना इत्यादि वे कदम हैं जो इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हैं।

नीति तथा प्रशासन (Policy and Administration)

नीति तथा प्रशासन के बीच एक सुनिश्चित भेद करने का प्रयत्न **वुडरो विल्सन** ने 1887 में प्रकाशित अपने लेख **'प्रशासन का अध्ययन'** में किया था। उनके विचार में नीति-निर्माण एक राजनीतिक कार्य है, जबकि प्रशासन केवल नीतियों को लागू करने मात्र से सम्बन्ध रखता है। उनके शब्दों में, "प्रशासन का क्षेत्र व्यापार का क्षेत्र है। यह राजनीति की हड़बड़ी तथा कलह से अलग होता है।"[3] प्रशासन तो राजनीति के उचित क्षेत्र से बाहर ही रहता है। प्रशासकीय प्रश्न राजनीतिक नहीं होते। **विल्सन** का अनुगमन **गुडनाउ**[4] (Goodnow) ने भी किया। इन दोनों ने प्रशासन और राजनीति के बीच के अन्तर का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया और कई दशाब्दियों तक प्रशासकीय अध्ययन के प्रवाह को जारी रखा। 1926 में **ह्वाइट** ने अपनी पुस्तक *Introduction to the Study of Public Administration* के प्रथम संस्करण में राजनीति तथा प्रशासन के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींची।

फिर भी इतना स्पष्ट दोहरापन अब अमान्य और अप्रामाणिक करार दे दिया गया है। लोगों की राय इस मत के अनुरूप रही है कि प्रशासन को नीति से पूर्णतः अलग नहीं किया जा सकता और न नीति ही प्रशासन को त्याग सकती है। **लूथर गुलिक** इस दृष्टिकोण के अग्रणी पोषकों में थे। इन सबके अतिरिक्त, **ऐपल्बी** का नाम प्रायः इस तर्क के साथ जुड़ा हुआ है कि राजनीति तथा प्रशासन अलग नहीं किये जा सकने वाले युगल (twins) हैं। उनके अनुसार, प्रशासन राजनीति है क्योंकि लोक-हित के प्रति उत्तरदायी होना उसके लिए आवश्यक होता है। उसके ही शब्दों में, "प्रशासकगण निरन्तर भविष्य के लिए नियम निर्धारित करते रहते हैं और प्रशासक ही निरन्तर यह निश्चित करते हैं कि कानून क्या है, कार्रवाई के अर्थ में इसका तात्पर्य क्या है, तथा प्रचलित और भावी आदान-प्रदान के सिलसिले में दोनों पक्षों अर्थात् प्रशासन और नीति के अपने अलग-अलग अधिकार क्या होंगे। प्रशासक एक अन्य प्रकार से भी भावी नीति-निर्माण में भाग लेते हैं, वे विधानमण्डल के लिए प्रस्तावों एवं सुझावों का स्वरूप निश्चित करते हैं। यह नीति-निर्माण का ही एक भाग होता है।"[5] इस प्रकार सार्वजनिक अधिकारी आज नीति-निर्धारण (formation) तथा नीति-निष्पादन (execution) दोनों ही कार्यों में संलग्न होते हैं, और सरकार ऊपर से नीचे तक प्रशासन तथा राजनीति का एक सम्मिश्रण बन गयी है। पीटर

---

1. Terry, G. R. : *Principles of Management*, 1954, p. 171.
2. Dimock, M. E. & Dimock, G. O. : *Public Administration*, 1956, p. 82.
3. Quoted in Waldo, D. : *Ideas and Issues in Public Administration*, p. 71.
4. Goodnow, F. J. : *Politics and Administration—A Study in Government*, New York, Macmillan.
5. Appleby, P. H. : *Policy & Administration*, 1949, p. 7

ओडेगार्ड (Peter Odegard) का भी यही कथन है कि "नीति तथा प्रशासन राजनीति के जुड़वाँ बच्चे (Siamese twins) हैं जो एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।"

इस तर्क के विपरीत ऐसे तर्क देना उचित नहीं है जिससे यह विश्वास होने लगे कि नीति और प्रशासन के बीच कोई भेद ही नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि ये दोनों कार्य अलग-अलग हैं, भले ही इनको एक ही व्यक्ति या समान व्यक्तियों के समूह सम्पन्न कर रहे हों। इन दोनों के बीच एक सामान्य, स्पष्ट तथा लोचदार भेद सम्भव न होते हुए भी वांछनीय है। सही अर्थ में ह्वाइट ने लोक प्रशासन की परिभाषा 'लोक-नीति के प्रवर्तन' के रूप में की। लुई ब्राउनलो इसी भेद पर बल देते हुए कहते हैं कि "राजनीति और प्रशासन के बीच अन्तर है, और यह भेद सदैव बना रहेगा, चाहे प्रजातन्त्रीय समाज में उनमें कितना ही निकट सम्बन्ध क्यों न हो।"[1]

नीति का निर्माण (Formulation of Policy)

स्मरणीय है कि नीति कोई स्थिर वस्तु नहीं है, और न यह स्थायी ही होती है। यह गतिशील है और निरन्तर बदलने की इसमें सतत् प्रवृत्ति होती है। जब उद्देश्य बदलते हैं, पर्यावरणों में परिवर्तन होता है तथा परिस्थितियों में भिन्नता आती है, तो उसी के अनुसार नीति का निर्धारण किया जाना स्वाभाविक हो जाता है। **सेक्लर-हडसन** नीति के प्रत्येक विनिश्चय को ठीक ही 'किसी प्रक्रिया में एक क्षण' मानते हैं। दूसरे शब्दों में, नीति-निर्धारण एक निरन्तर चलने वाला दायित्व है, और अनुभव के प्रकाश में नीति का पुनर्निर्धारण उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना प्रथम बार उसका निर्धारण। दूसरे, नीतियाँ 'शून्य में नहीं बनायी जातीं,' अर्थात् नीति-निर्माता स्वच्छन्दता से नीतियों के निर्धारण में स्वतन्त्र नहीं होता अपितु उसे कई तत्वों को ध्यान में रखना पड़ता है। उदाहरण के लिए, संविधानों के प्रावधानों की जैसी व्याख्या न्यायपालिका तथा विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों ने की है उसी के अनुसार नीति का होना आवश्यक होता है। प्रचलित सामाजिक रूढ़ियाँ, प्राचीन परम्पराएँ, रीति-रिवाज, प्रथाएँ तथा लोकमत भी नीति-निर्माण को प्रभावित करते हैं। कभी-कभी तो अन्तर्राष्ट्रीय कानून तथा नियम और विश्व-लोकमत भी नीति-निर्माण को प्रभावित करते हैं। सरकार के किसी अभिकरण विशेष की नीति का दूसरे अभिकरणों से तालमेल बैठाने की आवश्यकता होती है। तीसरे, समाज में विविध प्रकार के असंख्य दबाव डालने वाले समूह होते हैं, जो नीतियों को अपने हितों के अनुरूप ढालने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। परिणामतः नीतियों का एकीकरण एक आवश्यक कार्य होते हुए भी कठिन कार्य हो जाता है। अन्तिम बात यह है कि नीति लगभग सदैव ही बहुत-से व्यक्तियों के सामूहिक प्रयत्न का फल होती है। **सेक्लर-हडसन** के शब्दों में, "तो फिर सभी प्रकार से नीतियाँ निश्चित की जाती हैं, और वे सभी प्रकार के मामलों से प्रभावित भी होती हैं।"[2]

नीति-निर्णय में कुछ सरकारी व्यक्ति या निकाय अनुमोदन करने की कार्रवाई करते हैं जिसका प्रयोजन वरीयता-प्राप्त नीति-विकल्प का अनुमोदन करना, उसे संशोधित या अस्वीकार करना होता है। यदि नीति-निर्णय सकारात्मक होता है तो वह विधि-निर्माण के अधिनियम या कार्यकारी आदेश के प्रवर्तन का रूप ले लेता है। नीति-निर्णय के चरण पर नीति-विकल्पों के चयन करने का कार्य ही सामने नहीं रहता बल्कि नीति-विकल्प के चयन के बाद उसके लिए की गयी कार्रवाई भी सम्मिलित रहती है। कार्रवाई का समर्थन करने वाले लोग यह सोचते हैं कि उन्हें पूर्ण समर्थन न भी मिले, जैसे-जैसे प्रतिपादन प्रक्रिया निर्णय की स्थिति तक पहुँचेगी, कुछ प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये जायेंगे, कुछ स्वीकार कर लिये जायेंगे, और कुछ को संशोधित कर

1. Brownlow, L. : *A Passion for Politics*, 1955, p. 256.
2. Seckler-Hudson : *op. cit.*, 1957, p. 71.

लिया जायेगा। इस प्रकार यह प्रक्रिया उस समय तक चलती रहेगी जब तक मतभेदों को कम नहीं कर लिया जाता।

जिस वातावरण में नीति का जन्म होता है उसको अलग करके उसके निर्णय की प्रक्रिया को ठीक प्रकार से नहीं समझा जा सकता। नीति-कार्रवाई की माँगें वातावरण में उत्पन्न होती हैं और ये राजनीतिक पद्धति में संचालित हो जाती हैं। साथ ही नीति-निर्माता जो कुछ कर सकते हैं वातावरण उस पर सीमा का निर्धारण करके बाधाएँ खड़ी करता है। वातावरण में प्राकृतिक संसाधन, जलवायु, भौगोलिक विशेषताएँ, जनसंख्या और स्थानीय स्थिति जैसे कारकों एवं राजनीतिक संस्कृति, सामाजिक रचना और आर्थिक पद्धति भी सम्मिलित होती है। यहाँ वातावरणात्मक कार्यकारकों में से दो को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। ये हैं : राजनीतिक संस्कृति और सामाजिक-आर्थिक स्थिति। इन पर चर्चा करना आवश्यक है।

राजनीतिक संस्कृति (Political Culture)—सामाजिक जीवन में संस्कृति को सम्पूर्ण प्रतिमान और जीवन- यापन की विरासत में प्राप्त आचरण की रीतियों के रूप में परिभाषित किया गया है जिन्हें व्यक्ति अपने समुदाय या वातावरण से प्राप्त करता है। अधिकांश समाज इस बात पर सहमत हैं कि संस्कृति उन कारकों में से एक है जो सामाजिक क्रिया को निर्धारित एवं प्रभावित करते हैं। संस्कृति का वह भाग जिसे राजनीतिक संस्कृति कहा जाता है, उसमें व्यापक रूप से संस्थापित मुख्य विश्वास और अभिवृत्तियाँ होती हैं, जिनका सम्बन्ध सरकारी नीतियों और कार्रवाइयों से होता है। इस संस्कृति के कतिपय निहितार्थ और महत्व का सम्बन्ध नीति-प्रतिपादन से होता है। विभिन्न देशों में लोक-नीति और निर्माण के अन्तरों को, कम से कम आंशिक रूप में, राजनीतिक संस्कृति के सन्दर्भ में स्पष्ट किया जा सकता है। अमेरिका की अपेक्षा पश्चिमी यूरोपीय देशों में सामाजिक कल्याण के कार्यक्रम बहुत समय से चले आ रहे हैं और वे अधिक व्यापक भी हैं, क्योंकि इन देशों में इस प्रकार के कार्यक्रमों के लिए जनता की माँग अधिक रही है और उसका अनुमोदन व्यापक स्तर पर रहा है। एक लेखक का सुझाव है कि लोगों का काल अर्थात् अतीत, वर्तमान और भविष्य के सापेक्ष महत्व के प्रति उनके दृष्टिकोण में नीति-निर्माण के लिए विरितार्थ उपस्थित है। भविष्य की अपेक्षा अतीत से अधिक अभिविन्यास अमेरिका की अपेक्षा सम्भवतः भारत में प्राचीन परम्पराओं, रीति-रिवाजों और सामाजिक मान्यताओं का अधिक समर्थन करता है। अमेरिका की संस्कृति अधिक भविष्योन्मुख, अनुकूलनशील और नवीन प्रक्रियात्मक है।

कुछ लेखकों ने संकीर्ण, अधीनस्थ और सहगामी राजनीतिक संस्कृतियों के बीच अन्तर किया है। संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति में नागरिकों में राजनीतिक प्रणाली और राजनीतिक भागीदारी के रूप में अपनी स्थिति की न तो जानकारी होती है और न इस हेतु उनका अभिविन्यास ही किया जाता है। इटली इस संस्कृति का उदाहरण है। अधीनस्थ राजनीतिक संस्कृति में, अनेक भागीदारी के रूप में अपनी भूमिका की बहुत कम जानकारी होती है। वह सरकारी प्राधिकार के प्रति जागरूक होता है, उसके राजनीतिक विचार हो सकते हैं, परन्तु वह प्रमुख रूप में निष्क्रिय होती है। सहगामी राजनीतिक संस्कृति अमेरिका में देखने को मिलती है, और उसमें नागरिकों में उच्च स्तर की राजनीतिक जागरूकता और जानकारी होती है और समग्र रूप में राजनीतिक पद्धति के प्रति सुस्पष्ट अभिविन्यास व राजनीति में सार्थक नागरिक सहभागिता की धारणा होती है। इस प्रकार तीनों राजनीतिक संस्कृतियाँ नीति-निर्माण को अपने-अपने ढंग से प्रभावित करती हैं। संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति नीति-निर्माण को कम प्रभावित करती है जबकि सहभागी राजनीतिक संस्कृति सरकारी कार्रवाई या नीति-निर्माण को अधिक प्रभावित करती है। अधीनस्थ राजनीतिक संस्कृति संकीर्ण से अधिक और सहभागी से कम अर्थात् मध्यम रूप से नीति-निर्माण को प्रभावित करती है।

इस प्रकार राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक व्यवहार के रूप-निर्माण में मदद करती है। समाज में व्यवहार की अपनी शैली क्यों और किस प्रकार बनती है, इससे भी इसका सम्बन्ध होता है। इसका अध्ययन महत्वपूर्ण है, क्योंकि मूल्य आस्थाएँ और अभिवृत्तियाँ नीति-निर्माताओं और नागरिकों दोनों को ही सूचना प्रदान करती हैं, मार्गदर्शन करती हैं और उनकी कार्रवाइयों पर नियन्त्रण स्थापित करती हैं।

सामाजिक-आर्थिक दशाएँ और प्राकृतिक संसाधन—यहाँ पर 'सामाजिक-आर्थिक दशाएँ' पद का प्रयोग विस्तृत अर्थ में (आर्थिक संसाधनों में भौगोलिक विशेषताओं और जन-सांख्यिकीय चरों को सम्मिलित करके) किया गया है।

लोक-नीतियों को विभिन्न समूहों (सरकारी और गैर-सरकारी) के बीच घटित होने वाले संघर्षों में देखा जा सकता है। इन समूहों में प्रायः परस्पर-विरोधी हित एवं अभिवृत्तियाँ होती हैं। आधुनिक समाजों में संघर्ष का एक प्रमुख स्रोत आर्थिक क्रियाकलाप है। बड़े और छोटे व्यापार, मालिक और कर्मचारी, थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी, उपभोक्ता और विक्रेता, किसान और जमींदार, श्रमिक और उद्योगपति तथा इसी प्रकार के अन्य वर्गों के बीच संघर्ष होते हैं। वे समूह जो अल्प-सुविधाभोगी, असन्तुष्ट या आर्थिक परिवर्तन द्वारा प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हैं, प्रायः अपने भाग्य की हैसियत में सुधार के लिए सरकारी हस्तक्षेप या सहायता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इसी प्रक्रिया के अनुसार, बहुत से पूँजीवादी देशों में नियोक्ताओं के साथ श्रमिक संघ की लेन-देन की बातचीत से मिली मजदूरी से असन्तुष्ट संगठित श्रमिकों में अक्सर निम्नतम मजदूरी के सम्बन्ध में सरकार द्वारा कानून बनाने पर दबाव डाला है।

यह एक मान्य तथ्य है कि समाज के आर्थिक विकास का स्तर उस पर सीमाएँ आरोपित करता है, जिसके सम्बन्ध में सरकार समाज को जन-कल्याण और सेवाएँ उपलब्ध करा सकती है। आर्थिक संसाधनों की कमी सम्पन्न देशों की अपेक्षा विकासशील देशों की आकांक्षाओं को सीमित कर देती है। जिन तरीकों से सामाजिक-आर्थिक दशाएँ लोक-नीतियों को प्रभावित या बाधित करती हैं उनका पर्याप्त विश्लेषण किया गया है। राजनीतिक प्रक्रियाओं और उनके परिणामस्वरूप नीति-आर्थिक विकास इन दोनों का निर्माण करता है। विभिन्न राजनीतिक पद्धतियों वाले देशों के नीति चयन में अन्तर राजनीतिक विचारधारा और सामाजिक-आर्थिक स्तरों के आधार पर होता है।

नीति-निर्माण के लिए संकल्पनात्मक उपागम (Conceptual Approach of Policy Making)

1954 में प्रकाशित एक लेख में और उसके बाद लिखे अपने ग्रन्थ में **चार्ल्स लिण्ड्ब्लाम** ने नीति-निर्माण के उस तरीके, जिसे प्रायः 'तर्कसम्मत बोधगम्य उपागम' कहते हैं, का वर्णन किया है। इस बोधगम्य पद्धति में प्रशासक को अपने सामने प्रस्तुत लक्ष्य का सामना करना पड़ता है। जिसमें प्राथमिकताओं के रूप में मूल्यों की सूची के साक्षेप महत्व के अनुसार निर्धनता कम करने जैसी चुनौती होती है। सर्वोत्तम नीति का चयन करते समय नीति-निर्माता निर्धनों के स्वास्थ्य में सुधार करने, अपराध कम करने और निरक्षरता का उन्मूलन करने जैसे उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सभी मूल्यों या लाभों को तर्कसम्मत रूप में श्रेणीबद्ध करता है। इसके पश्चात् वह निर्धारित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कई सम्भव विकल्पों को सूत्रबद्ध करता है। फिर वह अनेक विकल्पों में से ऐसे सर्वोत्तम विकल्प का चयन करता है जो मूल्यों की श्रेणीबद्ध सूची को पूर्ण बनाने में सहायक होता है। यह निर्णय लेने का उपागम तर्कसम्मत है क्योंकि इसमें विकल्पों और

मूल्यों का तर्कसम्मत ढंग से चयन किया जाता है और सापेक्ष महत्व में उनका मूल्यांकन किया जाता है।

फिर भी, नीति का निर्माण करने वाली इकाइयों के भीतर और उनके वातावरण से उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के कारक और साथ ही इन कारकों में सतत् रूप से घटित होने वाले परिवर्तन नीति-निर्माता के कार्य को जटिल और तर्कसम्मत प्रक्रिया को कठिन बना देते हैं। यदि नीति-निर्माता को तर्कसम्मत निर्णय करने के नमूने के मानकों का अनुसरण करना पड़े तो वह इकाई की समस्याओं से संगत लगने वाले सभी लक्ष्यों को सूचीबद्ध करके उनका मूल्यांकन करेगा और तब वह प्रत्येक नीति के लिए ऐसे कदम उठायेगा जो प्रत्येक सम्भव लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम होंगे। लक्ष्यों और नीतियों के प्रत्येक समूह से जुड़े सम्भावित लाभों और हानियों के विषय में सभी संगत सूचनाओं के आधार पर नीति-निर्माता इकाई के कार्यक्रम उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम लक्ष्य व नीति-संयोजन का चयन करेगा।

नीति-निर्माण का तर्कसंगत नमूना अधिकारियों से यह अपेक्षा करता है कि वे प्रत्येक प्रश्न पर विचार करें और स्पष्ट रूप से ऐसे निर्णय लें जो अधीनस्थ कर्मचारियों का मार्गदर्शन कर सकते हों। इसके परिणामस्वरूप एकीकृत नीतियों का निर्माण होगा, जो परस्पर विरोधी न होकर पूरक होंगी।

प्रशासनिक इकाइयों में कार्मिक द्वारा तर्कसम्मत निर्णय करने की प्रक्रिया को बाधित करने वाली लोक प्रशासन प्रणालियों की निम्नलिखित पाँच प्रमुख विशेषताएँ हैं : (i) लक्ष्यों, समस्याओं और नीति-प्रतिबद्धताओं का बाहुल्य जो प्रशासनिक इकाई के वातावरण में सक्रिय तत्वों द्वारा ऊपर से लाद दिया जाता है या नीति-निर्माताओं पर हावी हो जाता है; (ii) विभिन्न प्रकार के स्वीकार्य लक्ष्यों और नीतियों के विषय में पर्याप्त सूचना एकत्र करने के मार्ग में आने वाली बाधाएँ; (iii) नीति-निर्माताओं की व्यक्तिगत जरूरतों व प्रतिबद्धताओं का निषेध और अपर्याप्तता जो उनकी इकाई के दृष्टिकोण से स्वीकार्य होते हुए भी लक्ष्यों और नीतियों के मूल्यांकन में हस्तक्षेप करती हैं; (iv) प्रशासकीय इकाइयों के भीतर की संरचनात्मक कठिनाइयों और सरकार की विधायी व कार्यकारी शाखाओं के साथ इन इकाइयों के सम्बन्धों को समाविष्ट करने वाली कठिनाइयाँ; और (v) अलग-अलग प्रशासकों का पथभ्रष्ट व्यवहार। इन समस्याओं का सामना करते समय नीति-निर्माता ऐसे निर्णयों की खोज करने का प्रयास करते हैं जो सन्तोषप्रद हों।

आलोचकों द्वारा तर्कसम्मत पद्धति की अव्यावहारिक पद्धति के रूप में आलोचना की गयी है। जैसा कि इस प्रक्रिया से अपेक्षित है, नीति विकल्पों की पूरी सूची बनाना और सभी सूचनाएँ एकत्र करना असम्भव है। इसके अतिरिक्त, यह प्रक्रिया बहुत समय लेने वाली है जबकि नीति-निर्माता को बिना विलम्ब किये कार्रवाई करनी चाहिए। साथ ही, यह पूर्वानुमान भी भ्रामक है कि मूल्यों को श्रेणीबद्ध और वर्गीकृत किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, इस पद्धति के अनुसार, नवीन नीतियों का निर्णय करने से पहले प्रत्येक चीज पर विचार किया जाना चाहिए। इसमें जोखिम बना रहता है क्योंकि नवीन नीतियों को अपनाने के परिणाम अज्ञात होते हैं।

नीति-निर्माता
[POLICY MAKER]

सामान्यतया नीति-निर्माता दो प्रकार के होते हैं : सरकारी तथा गैर-सरकारी। यहाँ दोनों प्रकारों का अध्ययन आवश्यक है।

1. **सरकारी नीति-निर्माता**—इसके प्रकार निम्नलिखित हैं :

(1) **विधानमण्डल** (Legislative)—औपचारिक रूप से विधानमण्डल नियम बनाने का कार्य करते हैं। आवश्यक रूप से इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके पास स्वतन्त्र निर्णय करने की शक्तियाँ होती हैं या वे वास्तव में सरकारी नीति का निर्माण करते हैं। प्राय: यह कहा जाता है कि ब्रिटिश और भारतीय संसद केवल उन नियमों को अपनी सहमति प्रदान करती हैं जिनका उद्‌भव राजनीतिक दलों और दबाव-समूहों द्वारा होता है, जिनकी रचना अधिकारीतन्त्र द्वारा की जाती है, और जिनको विधानमण्डल में समुचित बहुमत रखने वाली सरकार यह जानती है कि वह अपने द्वारा चयनित किसी भी नियम को संसद द्वारा पारित करा लेगी। विधि-निर्माण का अनुमोदन करने के दौरान संसद जनता के लिए सरकारी नीतियों और उनके परिणामों पर विचार-विमर्श करने, छानबीन करने, आलोचना करने और उनका प्रसार एवं प्रचार करने जैसी अन्य महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। फिर भी, शक्ति-पृथक्करण की अमेरिकी पद्धति में विधानमण्डल अक्सर नियम-निर्माण के मामले में स्वतन्त्र और अन्तिम निर्णय लेते हैं। अमेरिका की कांग्रेस में स्थायी समिति को प्रस्तावित विधि-निर्माण पर पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं और वह सदन के सदस्यों के बहुमत के विरोध में भी अपना कार्य कर सकती है। विधायक मत देते समय व्यक्तिगत या सैद्धान्तिक अभिविन्यास की अपेक्षा अपने दलीय सम्बन्ध से अधिक नियन्त्रित होते हैं। कुछ विशिष्ट मामलों में उसका निर्णय अपने निर्वाचन क्षेत्र की अपेक्षाओं से भी नियन्त्रित हो सकता है। जबकि संसदीय प्रणाली वाले प्रजातान्त्रिक देशों में मतदान आवश्यक रूप में दलीय आधार पर होता है। निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि तानाशाही देशों की अपेक्षा प्रजातान्त्रिक देशों में किये जाने वाले नीति-निर्माण में विधानमण्डल अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इसके विपरीत, प्रजातान्त्रिक देशों में विधानमण्डलों को नीति-निर्माण में संसदीय पद्धति की अपेक्षा अध्यक्षीय पद्धति (अमेरिका) में अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।

(2) **कार्यपालिका** (Executive)—आज के 'कार्यपालिका-केन्द्रित युग' में सभी जगह सरकारें नीति-निर्माण एवं उसके कार्यान्वयन में अधिकाधिक रूप में कार्यकारी नेतृत्व पर निर्भर करती हैं। संसदीय पद्धति वाले देशों में सभी नीतियों को मन्त्रिमण्डल का अनुमोदन प्राप्त करना पड़ता है और संसद में समस्त महत्वपूर्ण नियम सरकार के मन्त्रियों द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं। अमेरिका में कानूनों को लागू करने के लिए राष्ट्रपति के अधिकारों से मान्यता प्राप्त है। समिति पद्धति के परिणामस्वरूप कांग्रेस के विभाजन और सशक्त दलीय नेतृत्व की कमी के कारण वह संस्था स्थिर एवं सुसम्बद्ध विधायी कार्यक्रमों का विकास करने में अक्षम हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे कांग्रेस राष्ट्रपति से यह अपेक्षा करने लग जाती है कि वह विधि-निर्माण के लिए प्रस्ताव रखने की पहल करे। किन्तु इसका यह आशय नहीं है कि कांग्रेस राष्ट्रपति के आदेशों पर कार्य करती है या केवल उसके प्रस्तावों का अनुमोदन ही करती है। राष्ट्रपति के प्रस्तावों को अधिनियम बनाने से पहले प्राय: रद्द या पर्याप्त रूप से संशोधित कर दिया जाता है। घरेलू नीति की अपेक्षा विदेश या रक्षा नीतियों के क्षेत्र में राष्ट्रपति को बड़ी संवैधानिक शक्ति एवं सक्रियात्मक स्वतन्त्रता प्राप्त है। अमेरिका की विदेश-नीति अधिकाधिक रूप में राष्ट्रपति के नेतृत्व और उसकी कार्यपद्धति का परिणाम होती है।

विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में सम्भवत: कार्यपालिका का नीति-निर्माण में अधिक हाथ रहता है।

(3) **प्रशासकीय इकाइयाँ** (Administrative Units)—संसार की प्रशासनिक पद्धतियाँ आकार एवं जटिल सोपानी संगठन और स्वायत्तता की मात्रा के हिसाब से विभिन्न प्रकार की हैं। पहले इसे राजनीतिक विज्ञान का स्वीकृत सिद्धान्त माना जाता था कि प्रशासक

सरकार के अन्य अंगों द्वारा निर्धारित नीतियों को कार्यान्वित करने वाले होते हैं किन्तु अब इस स्वीकृति की भ्रामकता अधिकाधिक रूप से सामने आने लगी है। अब यह आम समझ की बात बन गयी है कि राजनीति और प्रशासन एक-दूसरे से घुल-मिल गये हैं और प्रशासन अनेक तरीकों से नीति-निर्माण प्रक्रिया में संलग्न है।

विशेषत: जटिल औद्योगिक समाजों में नीति विषयक बहुत से मामलों में प्राविधिकता एवं जटिलता, लगातार नियन्त्रण की आवश्यकता और विधायिकाओं के पास समय तथा सूचना की कमी के कारण प्रशासनिक इकाइयों को, जिन्हें औपचारिक रूप से नीति-निर्माण करने वाला समझा जाता था, अब पर्याप्त विवेकाधिकार प्राप्त हो गये हैं। अमेरिका जैसी अध्यक्षीय तथा ब्रिटेन जैसी संसदीय सरकारों में ये इकाइयाँ नीति-निर्माण के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्तावों का प्रमुख स्रोत हैं। सरकारी कर्मचारी तीन प्रमुख तरीकों में नीति-निर्माण से सम्बद्ध होते हैं। प्रथम, नीति की व्यावहारिकता के सम्बन्ध में उन्हें मन्त्रियों को तथ्य, आँकड़े और आलोचना सामग्री की आपूर्ति करनी पड़ती है और यदि नीति-निर्माण के लिए विधायकों द्वारा पहल होती है तो विधायकों को यह कार्य करना पड़ता है। संसद-सदस्य और मन्त्री गैर-पेशेवरों का परिवर्तनशील निकाय होता है जिनमें राजनीतिक सूझबूझ, निपुणता या लोकप्रियता हो सकती है लेकिन उनमें विद्वत्ता और अनुभव की कमी हो सकती है। इसलिए उन्हें पेशेवर लोक-सेवकों पर निर्भर रहना पड़ता है तथा उनके सुझावों को समुचित महत्व देना पड़ता है। दूसरे, नीति-निर्माण के लिए प्राय: प्रशासन द्वारा पहल की जाती है। इसका कारण यह है कि प्रशासन ही सतत् रूप से जनसाधारण के सम्पर्क में रहते हैं और इसलिए वे नीति के कार्यान्वयन के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को भलीभाँति समझने की स्थिति में होते हैं। अधिकारीतन्त्र द्वारा इन कठिनाइयों को भी दूर करने या वर्तमान नियम में संशोधन करने के सुझाव एवं प्रस्ताव अक्सर प्रस्तुत किये जाते हैं। तीसरे, समय और ज्ञान के अभाव के कारण विधानमण्डल आधारभूत अंश में ही अधिनियमों को पारित करते हैं और उनको विस्तृत रूप प्रदान करने का कार्य प्रशासन पर छोड़ देते हैं। इस प्रकार, नीति-निर्माण का अधिकतम क्षेत्र प्रशासन को प्राप्त हो जाता है।

(4) **न्यायालय** (Judiciary)—जिन देशों में न्यायालय को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्राप्त होती है, वे नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। न्यायालयों के समक्ष जो विषय लाये जाते हैं उनके सम्बन्ध में न्यायिक समीक्षा और वैधानिक अर्थ-निरूपण की शक्ति के प्रयोग के माध्यम ने न्यायालयों में जनजाति की प्रकृति एवं विषय-वस्तु को प्राय: अत्यधिक प्रभावित किया है।

मुख्यत: न्यायिक समीक्षा का सम्बन्ध विधायी एवं कर्मचारी शाखाओं की कार्रवाइयों की संवैधानिकता का निर्धारण करने और यदि इस प्रकार की कार्रवाइयाँ संवैधानिक उपबन्धों के विपरीत हों तो उन्हें रद्द करने की शक्ति से है। न्यायपालिका ने अमेरिका में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों के बहुत-से क्षेत्रों में नीति-निर्माण में प्रमुख भूमिका निभायी है। भारत में भी न्यायालयों ने अपने न्यायिक समीक्षा के अधिकार के द्वारा नीति-निर्माण प्रक्रिया को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। फिर भी, भारत में उन पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि वे संशोधन की व्याख्या में रूढ़िवादी भूमिका निभाते हैं जिससे विधायिका एवं न्यायपालिका में पर्याप्त खींचातानी होती रहती है। न्यायालयों का अभिमत प्राय: सरकार के प्रगतिशील नियमों के विरुद्ध रहा है। न्यायिक बाधा को पार करने के लिए सरकार ने अक्सर संवैधानिक संशोधन का मार्ग अपनाया है।

2. **गैर-सरकारी सहभागी** (Non-government Participation)—सरकारी नीति-निर्माताओं के अतिरिक्त दबाव-समूह, राजनीतिक दल और नागरिक जैसे अन्य लोग भी

नीति-निर्माण प्रक्रिया में भाग लेते हैं। अनिवार्य नीतिगत निर्णय करने के कानूनी प्राधिकार के बिना ये लोग नीति-निर्माण को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं।

(1) **दबाव-समूह**—दबाव-समूह आजकल अधिकांश देशों में नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न देशों में दबाव-समूह की शक्ति या प्रभाव-वैधता विभिन्न प्रकार की होती है। यह इस बात पर निर्भर करती है कि देश प्रजातान्त्रिक है या तानाशाही, विकसित या विकासशील। दबाव-समूह की मूल चिन्ता किन्हीं विशिष्ट मामलों में नीति को प्रभावित करने की होती है। किसी विशेष नीतिगत प्रश्न पर अक्सर बहुत से समूह परस्पर विरोधी कार्य करते हैं जिससे नीति-निर्माताओं को विरोधी माँगों के बीच चयन करने की समस्या का सामना करना पड़ता है। सुसंगठित, सक्रिय, नेतृत्व-कुशल, संसाधन शक्ति से सम्पन्न समूहों का असंगठित, मूक सदस्यता वाले समूहों की अपेक्षा अधिक प्रभाव पड़ता है।

(2) **राजनीतिक दल**—आधुनिक समाज में सामान्यतया राजनीतिक दल हित समूहीकरण का कार्य करते हैं। जिन तरीकों से दल हितों को संकलित करते हैं, यह दलों की संख्या तथा प्रभाव से प्रभावित होता है। अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देशों में जहाँ प्रमुख रूप से द्विदलीय प्रणालियाँ हैं, वहाँ दोनों दलों का विस्तृत निर्वाचन, समर्थन प्राप्त करने की इच्छा, अपने-अपने नीति-प्रस्तावों में जन-हित की माँगों को सम्मिलित करने के लिए प्रेरित करेगी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक समूहों में विमुख होने से बचने का प्रयास करेगी। दूसरी ओर बहुदलीय प्रणाली में दल कम से कम समूहीकरण का प्रयत्न करेंगे, जैसा फ्रांस में देखने को मिलता है। भारत में बहुदलीय प्रणाली है जिसमें राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दोनों दल हैं। अधिकांश दलों के चुनाव घोषणा-पत्र ऐसे हैं जो विषय-वस्तु की अपेक्षा विशेष बातों में बल देने के आधार पर ही विभिन्नता दर्शाते हैं। उनकी सर्वमान्य इच्छा यह होती है कि वे अपने निर्वाचन आधार को यथासम्भव व्यापक बनायें। संसदीय प्रणाली वाले राज्यों में जिस राजनीतिक दल का संसद में बहुमत होता है वह सरकार बनाता है और मुख्य सरकारी नीति-निर्माता होता है।

(3) **नागरिक व्यक्ति के रूप में**—चूँकि प्रजातान्त्रिक सरकारें प्रतिनिधि सरकारें होती हैं, अतः यह कहा जाता है कि नागरिक समस्त नीति-निर्माण प्रक्रिया में अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होते हैं। वस्तुतः यह सत्य नहीं है, यहाँ तक कि प्रजातान्त्रिक देशों में भी नीति-निर्माण में नागरिक सहभागिता कम ही होती है। बहुत-से लोग न तो अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं और न ही राज्य की राजनीति में रुचि लेते हैं। न तो वे दबाव-समूह में होते हैं और न जनकार्यों में कोई सक्रिय रुचि ही दिखाते हैं, यहाँ तक कि मतदान करते समय मतदाता नीतिगत विचारों से अपेक्षाकृत कम प्रभावित होते हैं। फिर भी नागरिकों की इस प्रकार की राजनीतिक अनुरुचि के बावजूद कुछ नागरिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से अवश्य भाग लेते हैं।

फिर भी यह सत्य है कि कोई सरकार चाहे तानाशाही ही हो, जनता की इच्छाओं, आकांक्षाओं, रीति-रिवाजों के विरुद्ध नहीं जा सकती है।

भारत में नीति-निर्धारण (Policy Making in India)

भारत में सरकारी तन्त्र के अन्तर्गत नीतियों का निर्माण कार्यपालिका में केन्द्रीकृत है, लेकिन नीति-निर्माण की विभिन्न प्रक्रियाएँ पूरे शासनतन्त्र के मध्य विकेन्द्रित हैं। नीति-निर्माण करने वाले कुछ महत्वपूर्ण अंग निम्नलिखित हैं :

(1) **संविधान**—सभी नीतियाँ संवैधानिक ढाँचे के अनुरूप होनी चाहिए। संविधान की प्रस्तावना में उल्लेखित उद्देश्य एवं नीति-निर्देशक तत्व नीतियों का निर्धारण करते हैं।

(2) **विधानमण्डल**—प्रमुख रूप में इसका कार्य विशेषाधिकार का प्रयोग करना, नियम बनाना तथा प्रभाव डालना है। अन्तिम रूप से कुछ नीतियों को निश्चित करने में यह केवल सहायता प्रदान करता है। नीतियों के ऊपर संसदीय नियन्त्रण के बहुत-से एवं विभिन्न अवसर होते हैं, जैसे विधि-निर्माण, राष्ट्रपति का अभिभाषण, बजट पर सामान्य बहस, अनुदान देना, प्रश्न-विप्रश्न, स्थगन-प्रस्ताव तथा अन्य प्रस्ताव। फिर भी इस नियन्त्रण की सीमाएँ हैं :

(अ) प्रत्येक सार्वजनिक नीति के लिए विधानमण्डलीय अधिनियम की आवश्यकता नहीं होती; तथा

(आ) विधानमण्डल सामान्यतः विधि-निर्माण के कार्य को प्रस्तावित करने में पहल नहीं करता।

(3) **मन्त्रिमण्डल**—लोक-नीति का निर्धारण प्रमुखतः मन्त्रिमण्डल द्वारा ही किया जाता है। यही सर्वोपरि संचालक तथा नियन्त्रक निकाय है। नीति सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण समस्याओं पर बहुधा मन्त्रिमण्डल द्वारा ही विचार किया जाता है। प्रत्येक मन्त्रालय की नीति का सूत्रपात तथा निर्धारण उस मन्त्रालय का मन्त्री ही करता है। मन्त्रिमण्डल के भीतर प्रधानमन्त्री ही नीति-निर्माण का केन्द्र होता है।

(4) **योजना आयोग**—विभिन्न दृष्टियों से यह केवल एक परामर्शदायी निकाय ही है, फिर भी लोक-नीतियों के निर्धारण में, योजना तथा विकास के अतिरिक्त अन्य मामलों पर यह निकाय विशेष प्रभाव डालने वाला सिद्ध हुआ है। इसके परामर्शदायी कार्य तो सम्पूर्ण प्रशासन तक विस्तृत हैं।

(5) **राष्ट्रीय विकास परिषद**—यह प्रधानमन्त्री तथा राज्यों के मुख्यमन्त्रियों से मिलकर बनती है। यह योजना के क्षेत्र में नीति-निर्धारण का सर्वोच्च निकाय है।

(6) **लोक-सेवाएँ**—नीति-निर्धारण में लोक-सेवाओं का कार्य त्रिसूत्री है : (अ) कार्य-पालिका द्वारा निर्धारित किसी उद्देश्य विशेष का निष्पादन करने के लिए कोई नीति निर्धारित करना और यह निश्चित करना कि वह नीति उद्देश्य की ठीक-ठीक व्याख्या करती है या नहीं, (आ) उस नीति को विधायी रूप प्रदान करना; तथा (इ) नीति को क्रियान्वित करना। वे नीति-निर्माण में परामर्श तथा सहायता भी प्रदान करती हैं।

(7) **न्यायपालिका**—यह लोक-नीतियों पर दो प्रकार से प्रभाव डालती है—न्यायिक समीक्षा की शक्ति द्वारा तथा उच्चतम न्यायालय की परामर्शदायी शक्ति द्वारा।

(8) **मन्त्रणा निकाय तथा परामर्शदायी समितियाँ**— जैसे, स्थायी श्रम समिति, भारतीय श्रम सम्मेलन, आयात-निर्यात मन्त्रणा समिति तथा शिक्षा का केन्द्रीय मन्त्रणा मण्डल आदि। यह निकाय एवं समितियाँ नीति-निर्धारण में महत्वपूर्ण भाग लेती हैं।

(9) **दबाव-समूह**—जैसे, ट्रेड यूनियन, वाणिज्य मण्डल (Chamber of Commerce), विद्यार्थियों के संघ तथा स्त्रियों का सम्मेलन। इनके द्वारा नीति-निर्धारण प्रभावित किया जाता है।

(10) **राजनीतिक दल**—राजनीतिक दल चुनाव के घोषणा-पत्रों के माध्यम से अपनी-अपनी नीतियाँ घोषित करते हैं और उन्हीं के परिपालन हेतु सत्ता प्राप्त करने का भी प्रयत्न करते हैं।

(11) **व्यावसायिक सभाएँ**—जैसे, विधि संघ, अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद, अध्यापक संघ, आदि।

(12) **प्रेस**—लोकमत का सृजन करने, उसे संगठित तथा व्यक्त करने में समाचार-पत्रों द्वारा जो कार्य किया जाता है, वह सर्वविदित है। प्रेस नीति-निर्माण पर बहुत बड़ा प्रभाव डालते हैं।

नीति-क्रियान्वयन की प्रक्रिया (Process of Policy Execution)

एक प्राधिकृत लोक-नीति का क्रियान्वयन निदेशात्मक प्रक्रिया को करना है, जो सरल या स्वचालित नहीं है। **वान मीटर और कार्ल वान हार्न** ने 1975 में उल्लेख किया कि "अभी हम नीति-क्रियान्वयन की प्रक्रिया के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत कम जानते हैं।" जबकि **एडविन सी. हरग्रीव** ने नीति-प्रक्रिया को सामाजिक नीति के अध्ययन के लिए 'लुप्त कड़ी' कहा है। एक अन्य लेखक के अनुसार, नीतियों को बनाने और समर्थन के लिए हमें प्रस्तावित नीति को ग्रहण करने और लागू करने की सरकारी निष्पादन की क्षमता का पूर्वाभास अवश्य होना चाहिए। क्रियान्वयन का अर्थ होता है—पालन करना, हासिल करना, पूर्ण करना। इस सम्बन्ध में निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए : (अ) क्रियान्वयन को नीति से विच्छिन्न नहीं होना चाहिए, (ब) नीति-निर्माताओं को उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष साधनों का उपयोग करना चाहिए; (स) जिस सिद्धान्त का सहारा लिया है उस पर सावधानीपूर्वक विचार करना; (द) नीतियों में सरलता को अपनाना।

लोक-नीति क्रियान्वयन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें 'क्या हो सकता है' और 'क्या नहीं हो सकता है' की खोज की जाती है। क्रियान्वयन को एक नैत्यिक गतिविधि नहीं समझना चाहिए। जब नीति संक्रियात्मक होती है, तब इसके कुछ नगण्य पक्ष रुटीनाइज्ड (Routinized) हो जाते हैं। क्रियान्वयन के समय-काल में नीति बनाने वाले संगठन इस बात के प्रति सदैव चिन्तित रहते हैं कि सबसे अच्छी तरह से नीति के उद्देश्यों को कैसे प्राप्त किया जाय। क्रियान्वयन के समय नीति में कुछ मात्रात्मक परिवर्तन अवश्यम्भावी होते हैं। सरकार का सबसे महत्वपूर्ण कार्य क्रियान्वयन का है, न कि कितने लोग कार्यरत हैं तथा कितना धन व्यय किया जा रहा है। क्रियान्वयन के समय सरकार को विविध प्रकार की परस्पर-विरोधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। क्रियान्वयन की विभिन्न प्रकार की इकाइयों में संघर्ष उत्पन्न होता है जिसका प्रतिकूल प्रभाव क्रियान्वयन की प्रक्रिया पर पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में यदि नीति में कुछ परिवर्तन होते हैं तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। नीति-निर्देशों और वास्तविक क्रियान्वयन में परिवर्तन के निम्न कारण हो सकते हैं : (1) नीति-क्रियान्वयन में संलग्न लोग परस्पर-विरोधी आदेश एक से अधिक स्रोतों से प्राप्त करते हैं। अधिकांश प्रशासक एक से अधिक उच्च अधिकारियों से आदेश प्राप्त करते हैं; (2) कभी-कभी प्रशासक यह समझ नहीं पाते हैं कि नीति उनसे जो करवाना चाहती है, कैसे करें। ऐसी परिस्थितियों में प्रशासक अपनी पसन्दगी के अनुसार कार्य करें या कार्य न करें; और (3) कभी-कभी प्रशासकों के पास पर्याप्त सत्ता और अन्य आवश्यक नियन्त्रणों का अभाव होता है।

समस्त संगठन और संस्थाएँ सब प्रकार की लोक-नीतियों को लागू नहीं कर सकते हैं। उनका चयन करना आवश्यक है। इस चयन में संगठन की संरचना महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नीति किस प्रकार लागू की जायेगी, इसे संगठन निश्चित करता है। संगठन क्रियान्वयन की प्रक्रिया को गतिशीलता और स्थायित्व प्रदान करता है। **रिचर्ड एलमोर** ने चार संस्थागत मॉडलों का उल्लेख किया है जो क्रियान्वित प्रक्रिया के लिए वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। ये मॉडल हैं : व्यवस्था प्रबन्ध मॉडल, नौकरशाही प्रक्रिया मॉडल, संगठनात्मक विकास मॉडल और संघर्षपूर्ण एवं सौदाकारी मॉडल।

लोक-नीति का मूल्यांकन (Evaluation of Public Policy)

जिन लोगों के लिए नीति बनायी जाती है उन लोगों पर नीति की विषय-वस्तु और प्रभावों का आकलन करने का प्रयत्न करना ही लोक-नीति का मूल्यांकन है। नीति-मूल्यांकन प्राय: नीति के अन्तिम चरण पर ही नहीं किया जाता, बल्कि यह प्रक्रिया सतत् रूप से चलती रहती है। सामान्यत: नीति-मूल्यांकन की तीन प्रमुख विधियाँ निम्नवत् हैं :

1. **नीति-प्रभाव मूल्यांकन**—समय कार्यक्रम और उसकी प्रभाविकता के मूल्यांकन के लिए इस बात पर बल दिया जाता है कि कार्यक्रम मूलभूत उद्देश्यों का प्राप्त करने में किस सीमा तक सफल हुए हैं। राष्ट्रीय कार्यक्रमों के तुलनात्मक मूल्यांकन पर भी जोर दिया जाता है।

2. **नीति की कार्यनीति का मूल्यांकन**—यह मूल्यांकन कार्यक्रम, कार्य-नीतियों और कार्यों की सापेक्ष प्रभाविकता का आकलन है। इसमें इस बात का निर्धारण करने पर जोर दिया जाता है कि कौन सी कार्य-नीतियाँ, प्रणालियाँ और कार्यविधियाँ अधिक प्रभावी हैं।

3. **नीति परियोजना मूल्यांकन**—यह नीति प्रबन्धकीय तथा प्रचलन दक्षता पर जोर देते हुए अन्य क्रियाकलापों के जरिए अलग-अलग परियोजनाओं के मूल्यांकन की प्रक्रिया है।

नीति-मूल्यांकन पर विचार करते समय हमें नीति-निर्णय और नीति-परिणामों के बीच बुनियादी अन्तर को जान लेना चाहिए। नीति-निर्णय का आशय सरकार की परिणामबोधक कार्रवाइयों से है जिनको ठोस रूप में मापा जा सकता है, जैसे—सरकारी कार्यालयों, स्कूलों, राजमार्गों का निर्माण, कल्याणकारी हित, लाभों की अदायगी, अनाथालयों एवं जेलों के संचालन के क्रियाकलापों को ठोस रूप से मापा जा सकता है, लेकिन इनसे सम्बन्धित आँकड़े नीति-परिणामों अथवा जन-जीवन पर लोक-नीतियों के गुणात्मक प्रभाव के विषय में बहुत कम तथ्य उजागर कर पाते हैं। प्रति व्यक्ति के आधार पर यह जान लेना कि स्कूल-व्यवस्था में किसी विद्यार्थी पर कितना व्यय हुआ है, इससे शैक्षिक पद्धति को सामाजिक परिणामों को जानने की बात तो दूर रही, यह पता भी नहीं चलता कि स्कूली शिक्षा का विद्यार्थियों की ज्ञानात्मक एवं अन्य क्षमताओं पर क्या प्रभाव पड़ा। फिर भी, नीति-मूल्यांकन के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि निर्धारित नीति में कौन-कौन से लक्ष्य प्राप्त करने हैं, इन्हें किस प्रकार कार्यान्वित करना है और क्यों ? उद्देश्यों (परिणाम) को प्राप्त करने में कोई सफलता मिली है ? उससे नीति का क्या सम्बन्ध है ? नीति-निर्धारकों एवं प्रशासकों के लिए नीति-मूल्यांकन की अत्यधिक उपयोगी प्रणाली यह है कि कार्यकारण सम्बन्ध का निर्धारण करने और नीति के प्रभाव को सही रूप से मापने के लिए प्रणालीबद्ध मूल्यांकन किया जाये। वास्तव में, लोक-नीतियों, विशेष रूप से सामाजिक नीतियों के प्रभाव को वास्तविक परिशुद्धता से मात्रात्मक रूप में मापना प्राय: असम्भव होता है। कुछ बाधाएँ हैं जो नीति-मूल्यांकन के लिए समस्याएँ उत्पन्न करती हैं, जैसे—नीति-लक्ष्यों के सम्बन्ध में अनिश्चितता, कार्यकारण के निर्धारण में कठिनाई, असंगठित नीति का प्रभाव, आधार सामग्री, आँकड़े-तथ्यों की प्राप्ति में कठिनाई, आदि।

सरकार के अन्दर नीति-मूल्यांकन अनेक तरीकों से और विभिन्न लोगों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। कभी-कभी यह क्रमबद्ध क्रियाकलाप और कभी-कभी यह अव्यवस्थित या अनियमित क्रियाकलाप होता है। कुछ मामलों में नीति-मूल्यांकन सत्यवादी और कुछ में यह अनौपचारिक हो गया है। सरकारी नीति-मूल्यांकन में कुछ इकाइयाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनमें विधानमण्डल और उनकी समितियाँ, लेखा-परीक्षा कार्यालय, प्रशासनिक इकाइयाँ, योजना आयोग और विभागीय मूल्यांकन रिपोर्ट सम्मिलित हैं।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि आधुनिक प्रजातान्त्रिक राजनीतिक प्रणालियों में लोक-नीति का निर्माण और मूल्यांकन एक जटिल प्रक्रिया है। इसमें बहुत से भागीदार और कारण हो सकते हैं जो इनके परिणामों को प्रभावित करते हैं। नीति-प्रक्रिया का विश्लेषण करते समय इन सभी बातों को ध्यान में रखना चाहिए, जिससे सम्भावित बातों की जाँच की जा सके।

(2) नीति-निर्माण में नौकरशाही की भूमिका
[ROLE OF BUREAUCRACY IN POLICY FORMULATION]

लोक प्रशासन लोक नीतियों के निर्माण की अपेक्षा उन्हें लागू करने पर अधिक ध्यान केन्द्रित करता है। नीति-निर्माण और नीति-क्रियान्वयन सरकार के दो निश्चित कार्य हैं, फिर भी वे एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। नीति विधायिका या राजनीतिक सत्ता द्वारा बनायी जाती है जिसके पास नीति को वैधानिक सत्ता देने की शक्ति होती है। विधायिका अधिनियमों और कानूनों के द्वारा सामान्य रूप में नीति प्रस्तुत करती है। इन अधिनियमों और कानूनों को एक यथार्थ आकृति देने में सरकार का प्रशासनिक तन्त्र नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परन्तु, प्रशासनिक तन्त्र को नीति-निर्माण की वैधानिक सत्ता प्राप्त नहीं होती, फिर भी नीति-निर्माण में सहायता प्रदान करता है। उसका उत्तरदायित्व नीति को क्रियान्वित करना है। किन्तु, हाल के वर्षों में, नीति-निर्माण की दिशा में प्रशासनिक तन्त्र की भूमिका बढ़ी है। इसलिए, यह देखने में अजीब लगता है कि नीति-निर्माण और नीति-क्रियान्वयन प्रशासकों के हाथों में आ गये हैं। प्रशासकों की इस बात की आलोचना भी हुई है।

लोकतान्त्रिक मान्यता, यद्यपि इस पर महत्व देती है कि सरकार राजनीतिक होनी चाहिए न कि प्रशासनिक। प्रशासकों द्वारा सरकार नौकरशाही कहलाती है। लोकतान्त्रिक देशों में, नौकरशाही सरकार की कार्यपालिका का अंग होती है। सिद्धान्ततः नौकरशाही राजनीतिज्ञों द्वारा निर्धारित निर्णयों को लागू करना है, परन्तु व्यवहार में वे इससे अधिक होते हैं। नीति-निर्माण में नौकरशाही अधिक शक्ति का उपयोग करती है। अब नौकरशाही अपने विशिष्ट ज्ञान, प्रशासनिक जानकारी और राजनीतिक सत्ता के निकट होने के कारण नीति-निर्माण बनाने में अधिक प्रभाव रखते हैं। नीति-निर्माण के प्रारम्भिक चरण में उनकी भूमिका का विशेष महत्व होता है।

नीति-निर्माण में भूमिका के कारण (Reasons for Role in Policy Making)

प्रशासनिक भूमिका—भारतीय संविधान के अन्तर्गत उच्च लोक-सेवकों का नीति-निर्माण विकल्प देने में परामर्श देना संवैधानिक उत्तरदायित्व है। सचिव सरकार को निर्णय लेने की सलाह देते हैं। साथ ही वे मन्त्रियों को परामर्श के अतिरिक्त विभिन्न विकल्पों की जानकारी सकारण देते हैं। नीति के विभिन्न वित्तीय और प्रशासनिक पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं तथा उसकी अच्छाइयों और बुराइयों की भी जानकारी देते हैं। इस प्रकार उच्च लोक-सेवक नीति-निर्माण की प्रक्रिया में सलाहकार से अधिक भूमिका निभाते हैं।

ज्ञान और अनुभव—अपनी शैक्षणिक योग्यता, प्रत्यक्ष कार्य का अनुभव तथा नीति-क्रियान्वयन से प्राप्त अनुभव आदि के कारण लोक-सेवकों का ज्ञान पर लगभग एकाधिकार होता है। ज्ञान ही शक्ति है, यह कथन लोक-सेवकों पर लागू होता है मन्त्रियों के सन्दर्भ में। अनुभव से प्राप्त ज्ञान के आधार पर वे मन्त्रियों से आत्मविश्वास और ताकत से बातचीत कर सकते हैं। नीति-निर्माण के विभिन्न पहलुओं पर अच्छे-बुरे परिणाम की जानकारी प्रदान करते हैं, नीति की व्यावहारिकता और औचित्य की जानकारी देते हैं। साथ में आँकड़ों आदि से यह बताने का प्रयास करते हैं कि कौन-सी नीति अपनाना अच्छा या बुरा है। उनकी व्यावहारिक और तर्क पूर्ण

दलीलों के आगे मन्त्रीगण मौन हो जाते हैं। लोक-सेवक नीति के प्रशासनिक पक्ष को भी प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार आज के विशिष्टीकरण के युग में लोक-सेवक नीति-निर्माण के विभिन्न विकल्प प्रस्तुत करते हैं। यह कारण नीति-निर्माण में विशेष महत्व रखता है।

स्थायित्व—प्रशासनिक संगठन में मन्त्रियों की तुलना में अधिक सशक्त होने का कारण लोक-सेवकों का सेवा में स्थायित्वपन है। नीति-निर्माण, क्रियान्वयन और मूल्यांकन में जो समय लगता है उससे कम समय मन्त्री, विभाग में बने रहते हैं। अर्थात् मन्त्रियों का कार्यकाल अनिश्चित होता है। दूसरे, मन्त्री विभिन्न समितियों के सदस्य होते हैं, संसद के अधिवेशन में समय जाता है और अपने निर्वाचन क्षेत्रों के दौरे आदि में इतना समय व्यतीत होता है तथा अन्य कार्यों में व्यस्त रहते हैं। परिणाम यह होता है कि नीति-निर्माण जैसे महत्वपूर्ण कार्य के लिए अपेक्षित समय नहीं दे पाते हैं। मन्त्री नीति-निर्माण जैसे महत्वपूर्ण कार्य को प्राथमिकता देते हैं किन्तु उनकी अधिक व्यस्तता के कारण ऐसा करने में समर्थ नहीं होते। इन कारणों से भी लोक-सेवकों को अनेक मामलों में निर्णय लेने पड़ते हैं। फलस्वरूप राजनीतिज्ञों से अधिकारियों में प्रदत्त की मात्रा बढ़ी है।

नीति-निर्माण प्रक्रिया में उच्च लोक-सेवकों के कार्य (Functions of Civil Service in Policy Making Process)

मुख्य रूप से उच्च लोक-सेवक दो प्रकार के कार्य करते हैं। प्रथम, नीति सम्बन्धी बातों में राजनीतिज्ञों को तकनीकी सलाह देना, और दूसरे, नीतियों का क्रियान्वयन करना। नीति-निर्माण में उनके कार्य निम्नलिखित हैं :

प्रथम, उच्च लोक-सेवकों को राष्ट्रीय ध्येय के स्वरूप और महत्व की स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। द्वितीय, अनिश्चित स्थिति से बचने के लिए नीति-निर्माता की सहायता करना। जो नीति लागू की जा सकती है उसके महत्व के सम्बन्ध में सलाह देना और समस्त पहलुओं की जानकारी राजनीतिज्ञों को देना। तीसरे, सामान्य नीति को कैसे लागू किया जा सकता है, इसकी क्षमता लोक-सेवकों में होनी चाहिए। इसमें आने वाली लागत और लाभ आदि का विश्लेषण होना चाहिए। चौथे, जहाँ तक सम्भव हो तर्कसंगत दृष्टिकोण और आधुनिक प्रबन्धन तकनीक का उपयोग करना चाहिए। अन्तिम, नीति को लागू करने के लिए सम्बन्धित विभागों के बीच समन्वय स्थापित करना लोक-सेवकों का महत्वपूर्ण कार्य है।

नीति-निर्माण में समयावधि को ध्यान में रखना आवश्यक है। यह सफल नीति का अनिवार्य अंग है। किसी भी नीति-निर्माण की प्रक्रिया को अनिश्चित समय तक रोक कर नहीं रखा जा सकता। नीति-निर्माण में, अनिश्चितता और संकट की स्थिति से बचने के लिए दूरदर्शिता और प्रक्षेपण आवश्यक है। नीति-निर्माता और प्रशासकों को दूरदर्शिता की असफलता से उत्पन्न परिस्थितियों का सामना करने को तैयार रहना चाहिए। इस प्रकार नीति-निर्माताओं को 'संकट प्रबन्धन' की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे संकट से निपटा जा सके।

नीति-निर्माण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उच्च लोक-सेवक नीति-प्रबन्धन क्षमता में सुधार करें। इसके साथ नीति-विश्लेषण में भी सुधार की आवश्यकता है। इस प्रकार नीति-प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए उच्च लोक-सेवकों में सुधार, संगठनात्मक परिवर्तन, प्रशासनिक कार्य करने की प्रक्रिया में सुधार और राजनीतिज्ञों का समर्थन और विश्वास प्राप्त करना आवश्यक है। यह सर्वविदित है कि अच्छी, तर्कपूर्ण, सोची-समझी और व्यावहारिक नीति ही सफल हो सकती है। नीति किसी भी कार्यक्रम या योजना का प्रथम चरण है और यहीं से शुरूआत अच्छी हो जाय तो सफलता मिलने की सम्भावना अधिक है।